अंक 1
वर्ष 2015

भाषा बोली

Room to Read®

भाषा बोली

परामर्श	सौरभ बैनर्जी
संपादन	दिलीप तंवर
प्रबंध संपादक	कार्तिक चन्द्र साहु
भाषा परिमार्जन	रामेश्वर काम्बोज
डिजाइन	रवि मोहन शर्मा
डिजाइन समन्वयन	शील कुमार
प्रकाशक	रूम टू रीड इंडिया
मुद्रक	निखिल ऑफसेट

इस पत्रिका में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं। रूम टू रीड इंडिया की इन विचारों से सहमति हो, यह जरूरी नहीं है।

Room to Read®

World Change
Starts with
Educated Children

रूम टू रीड इंडिया ट्रस्ट
ऑफिस नं 201 ई (बी), द्वितीय मंजिल,
डी-21 कॉर्पोरेट पार्क,
सेक्टर-21, द्वारका,
नई दिल्ली-110075
फोनः 011 30491900
www.roomtoread.org
Dilip.Tanwar@roomtoread.org

अनुक्रम

संपादकीय 1

बाल साहित्य के जरिए प्रारंभिक भाषा एवं साक्षरता को सींचना 3
– शैलजा मेनन

वाचिकता और साक्षरता के प्रसंग में बाल साहित्य 10
– महेंद्र कुमार मिश्र

बाल साहित्य की जादुई दुनिया 17
– ऊषा शर्मा

बचपन के अन्तरंग साथी- सचित्र पुस्तकें 26
– अंजली नरोन्हा

पढ़ो, सीखो, पढ़ो और दोहराओ 32
– मीनू थॉमस

नैतिकता, बाल साहित्य और बच्चे 36
– प्रदीप कुमार

बाल पुस्तकें: महत्त्व, चुनाव और उपयोग 40
– कमलेश चन्द्र जोशी

संपादकीय

किसी भी साहित्य को अच्छा साहित्य मानने के लिए तमाम कसौटियाँ बताई जाती हैं कि वह ऐसा होना चाहिए, वह वैसा होना चाहिए, उसमें यह होना चाहिए या उसमें वह होना चाहिए। लेकिन इन सब कसौटियों के बावजूद साहित्य के अच्छे होने की आखिरी कसौटी तो यही होती है कि उसमें पढ़ने वाले को आनंद आए, पाठक को अपनी यात्रा में बाँधे रखे और साथ बहने के लिए मजबूर कर सके। यानी पढ़ते हुए पाठक उस पल की मनोदशाओं को चाहे वे जो भी हो; उसे महसूस करवा दे, पाठक कहानी के पात्र की मनोदशा से गुजरने लगे। वह मनोदशा का अहसास ही होता है जो किसी पाठक के लिए आनंद का स्रोत बनता है।

साहित्य का यह गुण बाल-साहित्य के अच्छा होने के लिए भी उतना ही लाजिमी है, जितना कि वयस्कों के लिए लिखे गए साहित्य के लिए। तो फिर क्या वयस्कों के लिए लिखे जाने वाले और बच्चों के लिए लिखे जाने वाले साहित्य में कोई फर्क नहीं होता? होता है और बड़ा साफ-सा फर्क होता है। एक वयस्क व्यक्ति और एक बच्चे के बीच जो शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और अनुभाविक फर्क होते हैं, उन्हीं के आधार पर दोनों प्रकार के साहित्य में भी फर्क होते हैं। यदि इस संदर्भ में मोटे तौर पर देखा जाए, तो एक वयस्क व बच्चे के सोचने-समझने के तरीके (संज्ञानात्मक) व अनुभवों में फर्क होता है, उनकी जरूरतों, समझ व नज़रिए में फर्क होता है, उनकी मूलभूत क्षमताओं-धैर्य रख पाना, पढ़ने के लिए परिश्रम कर पाना, एकाग्रता की अवधि, पठन सामर्थ्य, इत्यादि- में कुछ मूलभूत फर्क होते हैं तथा इन सब के आधार पर उनकी रुचियों, रुझानों, पसंद व नापसंद में भी फर्क पैदा हो जाते है। इन तमाम तरह के फर्कों की वजह से उनके लिए लिखे गए साहित्य में भी फर्क पैदा होना स्वाभाविक है जिन्हें वयस्कों व बच्चों के लिए लिखे गए साहित्य में विषय, प्रसंग, भाषा व शैली की जटिलता, अमूर्तता, व अपरिचितता, आदि के रूप में बड़ी आसानी से देखा जा सकता हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि आनंद की अनुभूति अच्छे बाल-साहित्य के लिए भी लाजिमी शर्त है तो एक फिर वे कौनसे अनिवार्य पहलू हैं, जो किसी बच्चे के लिए आनंद के स्रोत बन सकते हैं? किसी भी लिखित सामाग्री में पाठक को आनंद आए इसके लिए पहली लाजिमी शर्त है कि वह उसको पढ़ने में सक्षम हो, वह उसे पढ़ पाए। यदि वह पढ़ ही नहीं पाया तो, आगे की सारी बातें बेमानी और निरर्थक हैं।

यदि हम बच्चों के संदर्भ में उपयुक्त साहित्य की बात करें तो कम से कम तीन पहलुओं के बारे में संजीदगी से सोचना व उनका ध्यान रखना जरूरी होगा। पहला- बच्चों के बीच संज्ञानात्मक फर्क, दूसरा- रुचियाँ, रुझानों, जरूरतों, समझ व अनुभवों का फर्क और तीसरा व सबसे अहम फर्क जो बाकि सारे फर्कों पर भी असर डालता है, वह है पढ़ने की सामर्थ्य या पठन स्तर का फर्क।

पहले दो प्रकार के फर्कों के लिए बाल-साहित्य में भाषा, विषयवस्तु (content), शैली (genre), और स्वरूप (format) की विविधता मुहैया करा कर साहित्य को काफी हद तक उनके लिए उपयुक्त बनाया जा सकता है; लेकिन पठन स्तरों में फर्क के लिए साहित्य को उनके स्तरानुसार सावधानी से विकसित करने की जरूरत होती है।

पढ़ने के सूक्ष्म फर्कों के आधार पर पठन सामर्थ्य को कई स्तरों में बाँटा जा सकता है। लेकिन यहाँ समझने के लिए स्तरों की बात करें तो उसे कम से कम तीन स्तरों में बाँट कर देखना जरूरी होगा। पहला- वे बच्चे जो अभी पढ़ना सीखने की प्रक्रिया के बीच में हैं या पढ़ना सीखने की शुरूआती दौर में है। दूसरा- वे बच्चे जो अभी-अभी पढ़ने में थोड़े से सहज हुए हैं यानी नव-साक्षर और तीसरा- जो पढ़ने में ठीक-ठाक सहज हो चुके हैं व एक स्तर की निपुणता हासिल कर चुके हैं।

यहाँ हम मुख्य रूप से पहले स्तर के बच्चों के लिए ही उपयुक्त बाल-साहित्य की बात करेंगे कि आखिर वह कैसा हो, जो उन्हें स्वतंत्र व अच्छा पाठक बनने व बढ़ने की दिशा में मदद कर सके और अहम भूमिका निभा सके; क्योंकि यही वह स्तर है जिसके लिए भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण साहित्य की बात तो दूर, उपलब्धता ही न के बराबर है और उसके लिए अभी तक कोई विशेष चिंता और प्रयास भी दिखाई नहीं देते। जबकि अंग्रेजी व कुछ अन्य विकसित देशों की भाषाओं में इस स्तर के बच्चों के लिए साहित्य काफी तादाद में उपलब्ध भी है और लगातार विकसित भी हो रहा है। अनेक शोध अध्ययन इस बात को स्थापित कर चुके हैं कि इस स्तर पर बच्चों का लिखित सामग्री के साथ अंत:क्रिया यानी उसे उलटने-पलटने के मौके, चित्रों को देखकर अंदाज लगाने की कोशिश आदि-आदि, बच्चे को एक स्वतंत्र व अच्छे पाठक के रूप में विकसित होने में बेहद ही खास भूमिका निभाते हैं। हालाँकि, इस स्तर के बच्चों के लिए उपयुक्त साहित्य विकसित करना थोड़ा मुश्किल और चुनौतीपूर्ण काम जरूर है लेकिन बेहद महत्त्वपूर्ण और जरूरी है।

चूँकि इस स्तर के बच्चे अभी पढ़ना सीखने के नाजुक दौर में होते हैं इसलिए उनके लिए लिखित सामग्री का चुनाव व उसे तैयार करने में बेहद सावधानी बरतने की जरूरत होती है। इसके लिए निम्नलिखित बातों का ख़याल जरूर रखा जाए-

इस स्तर पर भाषा सरल व सहज हो। शब्द और वाक्य दोनों अर्थ और संरचना के लिहाज से सरल हों, यानी सरल, सहज और छोटे मगर अर्थपूर्ण हों। हालाँकि कुछ लोग इस बात से सहमत नहीं हैं कि भाषा सरल व सहज होनी चाहिए। उनका मानना कि इस उम्र के बच्चे जटिल विचारों को भी आसानी से समझ लेते हैं। लेकिन यहाँ इसे ठीक से समझने की जरूरत है। यह सच है कि मौखिक रूप से बात की जाए या कहानी सुनाई जाए तो बच्चे सचमुच जटिल व अमूर्त बातों को भी आसानी से समझ लेते हैं। पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यहाँ हम सुनकर समझने की बात नहीं कर रहे हैं। हम बात कर रहे हैं खुद पढकर समझने की। चूंकि बच्चे अभी पढ़ना सीखने की अवस्था से गुजर रहे हैं, ऐसे में उनके मन (mind) को एक साथ दो चीजों से लगातार जूझना होता है। पहला लिखित संकेतों को ध्वनि संकेतों में बदलना, जिसमें वे अपनी काफी ऊर्जा लगा रहे होते हैं तथा दूसरा है उसका अर्थ-निर्माण करते जाना। लगातार शब्द-दर-शब्द उसे याद रखते हुए अर्थ गढ़ने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते जाना। यह बेहद ही परिश्रम का काम है। यदि हम चाहते हैं कि बच्चे अर्थपूर्ण तरीके से पढ़ें जो कि पढ़े हुए का आनंद लेने के लिए लाजिमी है तो फिर हमें इस शुरुआती दौर में उनकी मुश्किलें कुछ कम करनी होंगी, शब्दों व वाक्यों की संरचना व अर्थ दोनों ही स्तरों पर। ऐसा इसलिए भी जरूरी है कि हमारे मन का काम करने का तरीका ही कुछ ऐसा जिसकी वजह से यह करना केवल सुविधाजनक ही नहीं बल्कि जरूरी भी हो जाता है। इसे एक उदाहरण से समझने की कोशिश करते हैं। आप में से अधिकतर व्यक्ति साइकिल चलाना तो जानते ही होंगे। अब जरा उस समय को याद करने की कोशिश कीजिए, जब आप साइकिल चलाना सीख रहे थे। उस समय जब हैण्डिल पर ध्यान देते तो पैडल पर से ध्यान हट जाता था, जब पैडल पर ध्यान देते तो हैण्डिल से ध्यान हट जाता और गिर जाते थे। यहाँ तक कि जो व्यक्ति साइकिल चलाना सीखने मे मदद कर रहा होता था वह भी कहता था कि अरे पैडल मार, अरे सामने देख, अरे हैंडल मोड़, इत्यादि-इत्यादि। अब कल्पना करो यदि उसी समय कोई हमसे यह भी कहता कि चलाते-चलाते गणित की पहेली भी हल करो। तो क्या हम कर पाते? बिल्कुल नहीं। क्योंकि हमारा 'मन' जब कुछ नया सीख रहा होता है तो वह उस समय में किसी दूसरी चीज पर या अन्य काम के बारे में सोच नहीं सकता। वह उस समय में सिर्फ वह सीखे जा रहे पर ही ध्यान केन्द्रित रखता है। लेकिन जब हम उसे सीख लेते हैं तो फिर वह दूसरे कामों के लिए तैयार हो जाता है। जैसा कि जब हम साइकिल चलाना सीख लेते हैं तो चलाते हुए हम गणित के सवाल हल कर सकते हैं, नई कहानियाँ बना सकते हैं, घर की समस्याओं के बारे सोच सकते हैं, और साइकिल भी चलती रहती है। उस समय न तो हैण्डिल पर ध्यान देने की जरूरत होती है और न पैडल पर। हम अपनी धुन में सोचते हुए - गाना गुनगुनाते हुए चलते रहते हैं।

कुछ ऐसा ही बच्चों के साथ भी होता है जब वे पढ़ना सीख रहे होते हैं। पढ़ने में अर्थ की निर्मिति जरूरी है इसलिए उस समय में लिखित प्रतीकों को ध्वनियों में बदलने (डी-कोडिंग) की प्रक्रिया और अर्थ निर्माण दोनो साथ साथ चल रहे होते हैं। ऐसे में यदि दोनों ही चीजें जटिल होंगी तो बच्चे के लिए मुश्किलें अधिक होंगी। यदि इसे थोड़ा आसान कर दिया जाए, तो अर्थ निर्माण करने में सहूलियत होगी। यदि शब्द व वाक्य जटिल व लम्बे हुए तो वे उसी मे उलझ कर रह सकते हैं और सम्भव है कि वे इस शुरुआती अवस्था में अर्थ पर ध्यान ही न दे पाएँ। जो कि सही मायने में पढ़ना है ही नहीं। इसी वजह से पढ़ना सीखने का शुरुआती दौर बेहद नाजुक दौर होता है जहां सामग्री का चुनाव करने व उसे तैयार करने में बेहद सावधानी बरतने की जरूरत होती है।

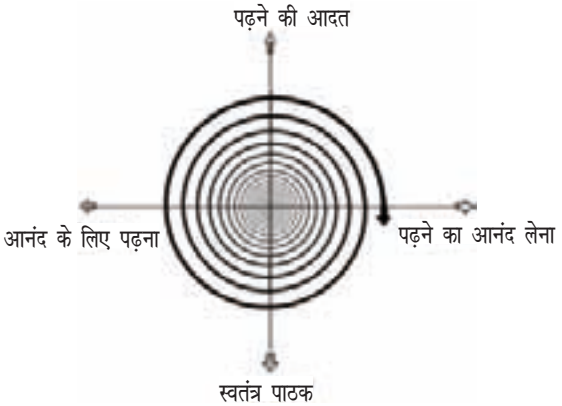

इस सबके आधार पर कहा जा सकता है कि इस स्तर के बच्चों की सामग्री की भाषा, संरचना और अर्थ, दोनों ही नजरिए से सरल व सहज हो, शब्द व वाक्य छोटे हों, विषयवस्तु जटिल, अमूर्त व बेहद लम्बी ना हो। हालाँकि इस तरह की सीमाएँ साहित्य को साहित्यिक नजरिए कुछ कमजोर कर देती हैं और यही इस काम की एक बडी चुनौती भी है। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि इन सीमाओं के साथ एक अच्छी व रोचक किताब तैयार न की जा सके। इन सीमाओं के चलते चित्रों का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। चित्र बच्चों के नजरिए से रोचक व इतने ताकतवर हों कि वे उन चित्रों में खुद को ढूँढ सकें, उनके आधार पर लिखे हुए का अनुमान लगा सकें और अनुमान के आधार पर पढ़ सकें। यदि ऐसा हुआ तो वे न सिर्फ पढ़े हुए का आनंद ले पाएँगे बल्कि उनमें यह भरोसा पैदा हो सकेगा कि वे पढ़ सकते हैं और समझ सकते हैं। यह भरोसा उन्हें किताबों के साथ और अधिक अंतःक्रिया करने, बार-बार पढ़ने की भूख व हिम्मत पैदा करेगा। बार-बार पढ़कर समझना (आनंद लेना) और समझने (आनंद) के लिए बार-बार पढ़ना, पढ़ने की सामर्थ्य को सततरूप से और भी बेहतर करता जाएगा। इस तरह पढ़ने और समझने की एक सतत व सर्पिल शृंखला की शुरुआत होती है जो पढ़ने की आदत विकसित करने और स्वतंत्र व सक्षम पाठक बनने में बेहद कारगर होती है।

इस अंक में आप बाल साहित्य व साक्षरता के काम से जुड़े अन्य लोगों के लेख पढ़ पाएंगे। उम्मीद है यह अंक आपको पसंद आएगा और बच्चों के साथ काम को और बेहतर करने में मदद करेगा।

बाल साहित्य के जरिए प्रारंभिक भाषा एवं साक्षरता को सींचना

— शैलजा मेनन
अनुवादः योगेंद्र दत्त

साक्षर व्यक्ति होने का आशय लिपि से परिचय मात्र नहीं होता। साक्षर होने का मतलब है कि जो भी पढ़ा जाए, उसका अपनी जिंदगी के साथ संबंध देख पाना, उसका प्रभावी इस्तेमाल कर पाना, उसकी समीक्षा करना और उससे गुजरते हुए नए अनुभव हासिल करना। इस लेख में शैलजा मेनन ने भाषा और साक्षरता के विकास में बाल साहित्य की भूमिका और कक्षा में इसके इस्तेमाल के तौर तरीकों पर रोशनी डालते हुए भाषा व साक्षरता के विकास के लिए एक उपयुक्त साहित्य, उसके मायने व उसके चुनाव के सवालों से भी रूबरू होने के मौके उपलब्ध कराए हैं।

हमारे देश के स्कूलों में भाषा को आमतौर पर नाकाफी और गैर-कल्पनाशील ढंग से पढ़ाया जाता रहा है। हमारे स्कूलों की कक्षाओं में प्रारंभिक भाषा एवं साक्षरता पर जो जोर दिया जाता है; वह बच्चों को यांत्रिक ढंग से लिपि सिखा देने पर केन्द्रित दिखाई देता है। इसमें अक्षरों, उनको मिलाकर बने शब्दों, वाक्यांशों, वाक्यों और अंततः लेखांशों की ही पुनरावृत्ति रहती है। इन कक्षाओं में लिखने का कौशल दो मौकों पर सामने आता है- बोर्ड पर लिखे अक्षरों, शब्दों और 'उत्तरों' को कॉपी में लिखना; तथा अध्यापक द्वारा बोल-बोल कर लिखवाना यानी इमला या श्रुतलेखन। भाषा से संबंधित सार्थक बातचीत और चर्चाएँ दुर्लभ होती हैं। पढ़ने और लिखने का कौशल सीखने और सिखाने की प्रक्रिया में शब्द और बच्चे के संसार के बीच किसी सार्थक संबंध या प्रासंगिकता का बोध दिखाई नहीं देता (फ्रेरे एवं मसेडो, 1987)।

समकालीन नीतिगत दस्तावेजों- जैसे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.ई.आर.टी. 2005) आदि, में रटंत और यांत्रिक शिक्षा से आगे जाने का आह्वान किया गया है ताकि सीखने की प्रक्रिया में बच्चे की ज्यादा सक्रिय हिस्सेदारी हो सके, पढ़ने और पढ़ाने में उसके परिवेश और उसकी कल्पनाओं को जगह मिल सके। शिक्षा अधिकार कानून (2009) में प्रावधान किया गया है कि हर स्कूल में एक पुस्तकालय होना चाहिए जहाँ बच्चों को अखबार, पत्रिकाएँ और सभी विषयों की किताबें मिलें जिनमें कहानियों की किताबें भी शामिल हों। ये सभी सही दिशा में उठाए गए और प्रासंगिक कदम हैं; मगर ये कोशिशें कामयाब हो सकें, इसके लिए सबसे पहली जरूरत यह है कि हमारे शिक्षक इस आशय की एक मुकम्मल समझदारी हासिल करें कि इन विचारों को व्यवहार में कैसे उतारा जा सकता है; और ऐसा करना क्यों जरूरी है। बच्चों का साहित्य शिक्षा के बहुत सारे आयामों को समृद्ध बनाने में बहुत अहम भूमिका अदा कर सकता है। इस लेख में मैं इस बात पर गौर करना चाहती हूँ कि कक्षाओं में भाषा एवं साक्षरता शिक्षा को और मजबूती देने के लिए बाल साहित्य का किस तरह इस्तेमाल किया जा सकता है।

साहित्य क्यों?

प्रारंभिक भाषा एवं साक्षरता कक्षाओं में साहित्य की जरूरत क्यों होती है, यह समझने के लिए इस बात पर गौर करना जरूरी है कि 'साक्षरता' और 'साहित्य' जैसे शब्दों से हमारा आशय क्या है। आइए पहले 'साक्षरता' पर बात करें। 'साक्षर' व्यक्ति होने का क्या मतलब होता है? यदि साक्षरता शिक्षा का सारा मकसद यही है कि बच्चों को अपना नाम लिखना सिखा दिया जाए या वे प्रारंभिक पाठ्यसामग्री को सटीक ढंग से पढ़ना और लिखना भर सीख जाएँ तो बच्चों को अक्षरों, शब्दों, वाक्यों और लेखांशों की पुनरावृत्ति के जरिए पढ़ाने में कोई हर्जा नहीं है जिसका मैंने पीछे जिक्र किया था। इससे आगे जाने की जरूरत ही नहीं है; इतना ही काफी है। मगर, साक्षर व्यक्ति के अर्थ को विस्तार भी दिया जा सकता है। इस विस्तृत कल्पना में केवल इतना ही काफी नहीं होगा कि लोग लिपि से न्यूनतम परिचय प्राप्त कर लें बल्कि इसके लिए हमें उनको इस बात का अहसास भी कराना होगा कि वे क्या पढ़-लिख रहे हैं और उसका उनकी जिंदगियों से उसका क्या संबंध है। हम चाहेंगे कि वे लिखित सामग्री को प्रभावी ढंग से इस्तेमाल करने, उसकी समीक्षा करने और उससे गुजरने में सक्षम हों। अगर साक्षर व्यक्ति तैयार करने से हमारा यही आशय है तो अचानक हम पाते हैं कि भाषा और साक्षरता कक्षाओं में बच्चों के साहित्य का इस्तेमाल कोई ऐच्छिक मसला नहीं बल्कि पाठ्यचर्या का अनिवार्य और केंद्रीय अंग बन जाता है।

उच्च स्तरीय साहित्यिक लेखन कल्पनाशील और सौंदर्यात्मक गुणों से लैस होता है (न्यूकेन, 2013)। साहित्य का मतलब केवल कहानियों की किताबों से नहीं होता। अगर गैर-साहित्यिक किताबें भी 'कल्पनाशील अथवा सौंदर्यात्मकता' की कसौटियों पर खरी उतरती हैं तो उनको भी उच्चस्तरीय साहित्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। श्रेष्ठ साहित्य बच्चों को अपनी जिंदगियों से जुड़ी कहानियों, विचारों और मुद्दों से अवगत कराता है और उन्हें ऐसी जिंदगियों और ऐसी दुनियाओं से वाकिफ भी कराता है जो अभी तक उनके लिए अनदेखी हैं या उनकी कल्पनाओं से भी परे हैं। यह साहित्य इस बारे में उन्हें सामूहिक ज्ञान प्रदान करता है कि विभिन्न लोग और समुदाय खुद को कैसे देखते हैं, वे अपने आपसी संबंधों को, प्रकृति के साथ अपने संबंधों को कैसे देखते हैं। बच्चों से ऐसा जीवन जीने की आशा नहीं की जा सकती जिसकी वे कल्पना नहीं कर सकते। साथ ही उन्हें अपनी मौजूदा जिंदगी की पड़ताल करने का मौका भी मिलना चाहिए। लिहाजा, साहित्य उस दुनिया के लिए एक आईना भी होते हैं और एक खिड़की भी जिसमें बच्चे जी रहे हैं और जिसमें उन्हें आने वाले वक्त में अपनी एक उपयुक्त जगह बनानी है (गाल्दा, 1998)। उच्चस्तरीय चिंतन कौशल, समझने की क्षमता, उद्देश्यपूर्वक और निश्चित पाठक के लिए लिखने की क्षमता, शब्दावली और वाक्य निर्माण की बारीकियों की समझ- ये सभी बातें साहित्य के साथ समृद्ध परिचय, विविध प्रकार की चीजों को पढ़ने की आदत और साक्षर विमर्शों के साथ गहरे जुड़ाव से पैदा होती हैं।

ल्यूकेन्स (2013) का कहना है कि साहित्य का मूल बिंदु इस सवाल से जूझने पर केंद्रित है कि एक जटिल दुनिया में एक जटिल इंसान की तरह रहने का क्या मतलब होता है? क्या इस तरह का सवाल केवल वयस्कों के लिए ही प्रासंगिक है? यहाँ यह दलील दी जा सकती है कि बहुत कम उम्र से ही बच्चों को भी ज्यादा गहरे सवालों से जूझने के अवसर दिए जा सकते हैं बशर्ते वे उनके विकास की अवस्था के लिए अनुकूल हों। इसका मतलब यह होगा कि हम बच्चों को भी सक्षम चिंतकों के रूप में देख सकते हैं जो महत्वपूर्ण प्रश्नों और मुद्दों पर अपने आसपास के वयस्कों के साथ मिलकर सोच सकते हैं। फिलहाल भारतीय कक्षाओं में भाषा और साक्षरता शिक्षा पर पाठ्यपुस्तकों का वर्चस्व है। इक्का-दुक्का कक्षाओं में एक्टिविटी कार्ड और वर्कशीट्स भी मिल जाती हैं। इनके पीछे यह निहित मान्यता मौजूद रहती है कि बच्चों की उम्र जितनी कम होगी पेचीदा सवालों पर उनकी सोचने की क्षमता भी उतनी ही कम होगी और लिहाजा उनको लिपि से परिचित कराने, छोटी-छोटी राइम याद कराने और ऐसे छिटपुट लेखांश पढ़वाना ही काफी है जो प्रायः अपनी साहित्यिक गुणवत्ता या बच्चों की जिंदगी के साथ संबंध या प्रासंगिकता के लिहाज से कोई खास महत्व के नहीं होते। बच्चों के साहित्य को कक्षा में लाने से अध्यापकों और बच्चों, दोनों को ही ऐसे शीर्षकों पर समृद्ध और सार्थक चर्चा करने का मौका मिलता है जो ज्यादातर बच्चों की रुचि से जुड़े हों (जैसे यारी-दोस्ती, मानव-पशु संबंध, पारिवारिक जीवन, क्षति, आदि)। इससे शिक्षकों को ऐसे सामाजिक/सांस्कृतिक महत्व के शीर्षकों को बच्चों की निगाह में लाने का भी मौका मिलता है जिनके बारे में संभवतः बच्चों ने खुद नहीं सोचा होगा। और अंत में, इससे बच्चों को शुरू से ही भाषा प्रयोग के सौंदर्यात्मक आयामों -भाषा के साथ खेलना, रूपक, चित्र पुस्तकों में बनी कला का आनंद लेना आदि

की परख मिलने लगती है। उन्हें इस सवाल पर सोचने का मौका मिलता है कि किसी बात को कहने का एक खास ढंग दूसरे ढंगों के मुकाबले ज्यादा/कम असरदार क्यों होता है? अलग-अलग विधाओं में लिखने की शैली किसी तरह बदल जाती है?

इस तरह के अवसर मिलने से बच्चों के ऐसे कौशल, रवैये और ज्ञान आधार विकसित होते हैं जो साक्षरता की उस विस्तृत दृष्टि का केंद्र हैं जो ऐसे साक्षर व्यक्ति तैयार करना चाहती है जोकि लिखित जगत से गुजरने, उसका इस्तेमाल करने और उसकी समालोचना करने की क्षमता रखते हों।

बच्चों के लिए किस तरह का साहित्य उपयुक्त होता है?

भाषा कक्षाओं में बाल साहित्य के महत्व पर चर्चा करने के बाद मैं इस सवाल पर आना चाहती हूँ कि बच्चों के लिए किस तरह का साहित्य उपयुक्त होता है। पहली बात यह है कि इस सवाल का कोई वस्तुनिष्ठ या 'सही' जवाब नहीं दिया जा सकता। इसके लिए, पहले हमें इस बारे में एक साझा समझ बनानी होगी कि "बाल" साहित्य से हमारा आशय क्या है। यह 'वयस्कों के' साहित्य से कैसे भिन्न या उसके समान होता है? 'बालसाहित्य' और 'वयस्कों के' साहित्य के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं होती। पुराने जमाने में सांस्कृतिक किस्से-कहानियाँ अकसर बड़ों और बच्चों को एक साथ ही सुनाए जाते थे। भारतीय गांवों में होने वाले ड्रामों, लोक कथाओं और विभिन्न प्रकार की कथा वाचन प्रस्तुतियों में उम्र के आधार पर दर्शकों में कोई भेद नहीं किया जाता था। जिन विषयों को छोटे बच्चों के लिए 'कठिन' माना जाता था, जैसे हिंसा, सेक्स, मौत और क्षति आदि, वे भी इन किस्से-कहानियों और कठपुतलियों का सामान्य हिस्सा होते थे। पश्चिम में ही सबसे स्थायी 'बालसाहित्य', जैसे गुलीवर्स ट्रेवल्स, हकेलबेरी फिन आदि को बच्चों को जहन में रखकर लिखा ही नहीं गया था। "बाल साहित्य" नाम की यह व्यावसायिक श्रेणी तो हाल ही में सामने आई है। इसका इतिहास पश्चिम में 200-250 वर्ष और भारत में इससे भी कम है। भारत में इस विधा की उम्र 50-60 साल से ज्यादा नहीं है। बेशक, इसके कुछ अपवाद निश्चय ही ढूंढे जा सकते हैं। मूल पंचतंत्र के बारे में माना जाता है कि वह तकरीबन तीसरी सदी ईसा पूर्व तीन राजकुमारों यानी बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए ही लिखी गई थी। मगर, 'बाल साहित्य' के नाम से सचेत साहित्य रचना (और उसकी मार्केटिंग) बच्चों और बचपन की आधुनिक अवधारणा के साथ जुड़ी हुई है जो बच्चों और बचपन को वयस्क जीवन से पृथक मानती है। यह परिघटना छपाई और वितरण के आधुनिक माध्यमों तक बढ़ती पहुँच से भी निर्धारित हुई है और ये साधन आधुनिक अर्थव्यवस्था का हिस्सा हैं। लिहाजा, जब हम यह सवाल पूछते हैं कि "बच्चों के लिए किस तरह का साहित्य उपयुक्त होता है?" तो पहले हमें इस प्रस्थानबिंदु पर गौर करना होगा कि बच्चा किसे कहा जाता है और एक खास उम्र में किसी बच्चे के लिए 'क्या उपयुक्त' है। ये कोई वस्तुनिष्ठ धारणाएँ नहीं हैं। इसी कारण, अलग-अलग संस्कृतियों और कालखंडों में ये अवधारणाएँ अलग-अलग रही हैं।

अगली बात, क्या छोटे बच्चों (जैसे, कक्षा 1-3 के बच्चे) के लिए चुना गया साहित्य बड़ी उम्र के बच्चों (मसलन कक्षा 4 और उसके बाद) के लिए चुने गए साहित्य से भिन्न होना चाहिए? जिन लोगों ने बच्चों के बीच काम किया है वे इस बात से अवगत होंगे कि सारे आयु वर्गों के बच्चों के लिए सभी किताबें समान रूप से प्रभावी नहीं होतीं। अगर आप 6 साल के बच्चे को पेचीदा विषयवस्तु और सघन शब्दावली वाला 450 पन्ने का उपन्यास पढ़ाते हैं तो उससे यह उम्मीद नहीं कर सकते कि वह गौर से कहानी को सुनता रहेगा। छोटे बच्चों के लिए सामग्री का चुनाव करते हुए उनके विकास की अवस्था से संबंधित कुछ बातों को ध्यान में रखना जरूरी है। ऐसे ही कुछ पहलुओं पर नीचे चर्चा की जा रही है (हालांकि यह सूची पूरी नहीं है)।

- लंबाईः यह मानते हुए कि छोटे बच्चों की एकाग्रता अवधि तुलनात्मक रूप से छोटा होती है इसलिए हमें उनके लिए छोटी सामग्री या कहानी ही चुननी चाहिए।
- चित्रांकनः ऐसी चित्र पुस्तकें जिनमें चित्रों और लिखित सामग्री, दोनों के माध्यम से कहानी आगे बढ़ती है, वह छोटे बच्चों के लिए बहुत अच्छी सामग्री होती है।
- भाषाः चुनी गई सामग्री की भाषा समृद्ध मगर छोटे बच्चों की समझ में आने वाली होनी चाहिए। उन्हें कुछ कठिन शब्दावली भी प्रस्तुत की जा सकती है। मगर, यदि ऐसे शब्द बहुत ज्यादा होंगे या वाक्य संरचना बहुत जटिल होगी तो शुरुआती अवस्थाओं में ऐसी सामग्री का प्रयोग बहुत फायदेमंद साबित नहीं होगा।
- संदर्भ, विषय और शीर्षकों का दायराः आप जो सामग्री चुनते हैं उसका शीर्षक और संदर्भ ज्ञात से अल्पज्ञात की ओर बढ़े तो

बेहतर रहेगा। बच्चों को ज्ञात और अल्पज्ञात, दोनों तरह की दुनियाओं से अवगत कराना जरूरी है मगर विषयों, किरदारों आदि का चयन ऐसा होना चाहिए कि बच्चे अपने आपको उनसे जोड़ कर देख सकें।

- रोचक शैलीः यह कहने की जरूरत ही नहीं है कि कम उम्र के पाठकों और श्रोताओं के लिए जो किताब लिखी या चुनी जाए उसकी शैली रोचक और आकर्षक होनी चाहिए।
- विधाओं की विविधताः बहुत छोटी उम्र के पाठकों को भी कविता, यथार्थपरक ललित साहित्य, फेंटेसी, गैर-साहित्यिक (सूचनापरक) पुस्तकों आदि सहित नाना प्रकार की विधाओं से परिचित कराया जाना चाहिए। यह मान लेना भूल होगी कि सूचनापरक पुस्तकें केवल ज्यादा उम्र वाले पाठकों के लिए ही सही होती हैं। यहाँ तक कि दो और तीन साल के बच्चे भी पशुओं की चित्र पुस्तकें जानना, उनकी आवाजों को पहचानना चाहते हैं। 6 और 7 साल के बच्चे इससे भी ज्यादा सूचनापरक सामग्री के लिए तैयार हो चुके होते हैं।
- पठनीयताः अगर मकसद यह है कि बच्चे इन किताबों को स्वतंत्र रूप से पढ़ें तो पठनीयता भी एक महत्वपूर्ण कसौटी बन जाती है। मगर, मेरा सुझाव है कि हम इन दो अलग-अलग उद्देश्यों को आपस में न मिलाएँः (1) बच्चों को अच्छे साहित्य से परिचित कराना; और (2) उन्हें स्वतंत्र रूप से पढ़ने की आदत डालना। अगर हम मुख्य रूप से पठनीयता के उद्देश्य से बच्चों की किताबें तैयार करना चाहते हैं तो भाषा, कहानी और चित्रों की साहित्यिक गुणवत्ता में काफी कमी आ जाती है। इसकी बजाय, जब तक कि वे खुद पढ़ने में सक्षम नहीं हो जाते तब तक हमें बच्चों को बोल-बोल कर सुनाना चाहिए। संयुक्त राज्य अमेरिका में बहुत सारे प्रकाशक 'प्रारंभिक पुस्तकों' और 'सच्चा बालसाहित्य' के भेद को ध्यान में रखते हुए सामग्री तैयार करते हैं। उनके लिए 'प्रारंभिक पुस्तकें' वे होती हैं जो बच्चों को स्वतंत्र रूप से पढ़ना सिखाने के लिए छापी जाती हैं। प्रारम्भिक पुस्तकें पठनीयता को ध्यान में रखकर तैयार की जाती हैं जबकि बाल साहित्य ऐसे लेखकों और चित्रकारों द्वारा तैयार किया जाता है जो बच्चों को 'वास्तविक' या 'सच्चा' साहित्य प्रस्तुत करना चाहते हैं। प्रारंभिक भाषा कक्षाओं में दोनों तरह की सामग्री महत्वपूर्ण होती है मगर बेहतर होगा कि हम अपने जहन में और कक्षा की प्रक्रियाओं में इन परस्पर जुड़ी श्रेणियों का भेद अच्छी तरह समझते हों।

साथ ही, अध्यापकों को ऐसे साहित्यिक चयन से बचना चाहिए जिसकी थीम और प्लॉट कमजोर हो; जिसमें भाषा खराब या अनुपयुक्त हो; जिसमें पूर्वाग्रह और स्टीरियोटाइप्सप का सहारा लिया गया हो; और चित्रांकन व छपाई की गुणवत्ता खराब हो (एनसीसीएल, 2012)।

नैतिकता और मूल्यों का अध्यापन और साहित्य

क्या बच्चों को नैतिकता या मूल्यों की शिक्षा देने के लिए साहित्य का प्रयोग किया जाना चाहिए? इस सवाल के अलग-अलग जवाब दिए जा सकते हैं मगर मेरा मानना है कि बच्चों के साहित्य को बच्चों के जीवन में उसी तरह की भूमिका अदा करनी चाहिए जिस तरह की भूमिका वयस्कों का साहित्य वयस्कों के जीवन में अदा करता है। क्या हम बड़े लोग साहित्य को मूल्य और आदर्श सीखने के लिए पढ़ते हैं? जब हम अपने पढ़ने के लिए कोई किताब चुनते हैं तो संभवतः यह कसौटी हमारे दिमाग में बहुत ऊपर नहीं होती। हम अपनी दिलचस्पी, किताब की उपलब्धता, उसके विषय, लेखक और विभिन्न दूसरे कारकों के आधार पर किताबें चुनते हैं। मगर, जब हम कोई किताब पढ़ चुके होते हैं तो क्या उसके फलस्वरूप हम कुछ नया सीख लेते हैं? अधिकांशतः, हाँ। यदि, जैसा कि मैंने पीछे जिक्र किया था, साहित्य हमें इस सवाल से जूझने में मदद देता है कि "इस जटिल विश्व में जटिल मनुष्य होने का क्या मतलब है?" तो अच्छे साहित्य से गुजरने के बाद प्रायः हमारी सोच पहले से ज्यादा समृद्ध हो चुकी होती है। इसी तरह, अगर हम बच्चों को भी उच्चस्तरीय साहित्य के साथ सार्थक रूप से जुड़ने में मदद देते हैं तो इससे उनकी सोच और जीवन में निश्चय ही समृद्धि आएगी मगर इसका यह मतलब बिल्कुल नहीं है कि हम उनके लिए नैतिकता या मूल्यों को ध्यान में रखकर ही साहित्य का चुनाव करें। इसकी बजाए हमें साहित्य को इस आधार पर चुनना चाहिए कि उससे बच्चें को जटिल मुद्दों पर ज्यादा गंभीर चिंतन और अर्थग्रहण का मौका मिलेगा या नहीं। जैसा कि गाइड टू गुड बुक्स (एनसीसीएल, 2012) में कहा गया है- "इस बात को समझना जरूरी है कि बच्चों के साहित्य में बहुत सारे समूहों- और उनके विश्व दृष्टिकोण और सोच- को अकसर नजरअंदाज कर दिया जाता है...। नैतिक विकास केवल यह बताने से नहीं होता कि क्या सही है और क्या गलत है बल्कि इस मुद्दे पर सोचने का अवसर प्रदान करने से संभव

होता है। लिहाजा लाइब्रेरी में किताबों का संग्रह विविधतापूर्ण होना चाहिए। उसमें विभिन्न प्रकार के वातावरणों, लोगों, घटनाओं, मुद्दों और दृष्टिकोणों को जगह मिलनी चाहिए" (पृष्ठ 8)। लिहाजा मुख्य उद्देश्य ये होना चाहिए कि सघन अवलोकन, चर्चा और कमेंटरी के जरिए विभिन्न इंसानी परिस्थितियों की समझ पैदा की जाए; न कि "सही" और "गलत" के बारे में स्याह-सफेद समझदारी रचने पर जोर लगाया जाए।

पढ़ना सीखना और सीखने के लिए पढ़ना

क्या बच्चों को 'पढ़ना सिखाने' के लिए साहित्य का इस्तेमाल किया जा सकता है? या, क्या इसका इस्तेमाल मुख्य रूप से बच्चों को 'सीखने के लिए पढ़ना' सिखाने के लिए ही किया जाना चाहिए? मेरे विचार में यह एक कृत्रिम भेद है जो ऐसे शिक्षकों ने बना दिया है जो 'पढ़ना सीखने' की बहुत संकुचित परिभाषा से चलते हैं। साक्षरता की जो विस्तृत परिभाषा पीछे दी गई है उसके हिसाब से पढ़ना सीखना और सीखने के लिए पढ़ना, दोनों प्रक्रियाएँ एक साथ ही चलती हैं। दोनों में कोई पृथकता और भेद नहीं होता। जब कोई बच्चा पहली बार स्कूल में आता है, खासतौर से अगर वह पहली पीढ़ी का विद्यार्थी है तो उसे न केवल साक्षरता की समझ हासिल करनी होती है बल्कि वह साक्षरता की संस्कृति -साक्षर व्यक्ति का रवैया, मूल्य-मान्यताएँ, ज्ञान और कौशल आदि- भी सीखता है। लिखित शब्दों पर महारत हासिल करने के लिए बच्चे को अपनी जिंदगी के इतने सारे घंटे लगाने की क्या जरूरत होती है? इसमें उसकी क्या दिलचस्पी होती है, उसके जीवन के लिए इस कवायद का क्या महत्त्व है? ये सारी बातें, 'पढ़ना सीखने' की प्रक्रिया का हिस्सा हैं। यह सारी मेहनत 'एक पाठक बनना सीखने' की प्रक्रिया का, एक साक्षर पहचान विकसित करने की प्रक्रिया का हिस्सा होती है। सुचयनित और उपयुक्त साहित्य छोटे बच्चों में लिखित शब्द और लिखित जगत के साथ एक जुड़ाव का अहसास विकसित करने में मदद दे सकता है। इससे बच्चों को कथानक की संरचना और विभिन्न प्रकार के कथानकों को समझने में मदद मिल सकती है। इससे उन्हें यह समझने में भी मदद मिल सकती है कि भाषा को कितने नाना तरीकों से और कितने विभिन्न उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इससे उन्हें 'छपाई की अवधारणा' विकसित करने में मदद मिल सकती है (क्ले, 2000) -यानी किताब को कैसे थामना चाहिए; कहाँ से पढ़ना शुरू करना चाहिए; पंक्तियाँ किस तरह से किस दिशा की ओर बढ़ती है; आदि। ये सब कुछ 'पढ़ना सीखने' की प्रक्रिया का हिस्सा हैं और साहित्य इस प्रक्रिया में बहुत भारी मदद देता है। बेशक इसमें 'सीखने के लिए पढ़ना' यानी विभिन्न संस्कृतियों, स्थानों, लोगों, अलग-अलग कालखंडों के बारे में सीखना भी शामिल है। जो इसमें शामिल नहीं है; वह है लिपि को डिकोड करना सीखना।

लिपि पर महारत हासिल करना प्रारम्भिक भाषा एवं साक्षरता पाठ्यचर्या का बहुत महत्त्वपूर्ण हिस्सा होता है। अध्यापक अपनी भाषा शिक्षण योजना तैयार करते हुए 'ब्लॉक'/कालखंड पद्धति अपना सकते हैं; जिसमें वे बच्चों को लिपि से अवगत कराने के लिए एक निश्चित समय तय करें। इसके लिए वे छोटी-छोटी, आसान पुस्तकें भी इस्तेमाल कर सकते हैं; ताकि विद्यार्थियों को परस्पर जुड़ी पाठ्य सामग्री को पढ़ने का मौका मिले। सबसे अच्छा होगा कि अध्यापक लिपिस्तरीय ज्ञान पढ़ाने के लिए साहित्य का प्रयोग न करें क्योंकि ऐसे में न तो लिपि पर महारत हासिल हो पाएगी और न ही साहित्य बहुत उच्च स्तर का होगा!

कक्षा में साहित्य का प्रयोग : सबको साथ लेकर चलना

विख्यात अमेरिकी शिक्षाविद् लुई रोज़ेनब्लाट ने एक दफा कहा था, "हमारा काम आमतौर पर किताबों को लोगों के पास लाना माना जाता है; मगर किताबें यूँ ही लोगों की जिंदगी में पैदा नहीं होतीं। लोग भी किताबों की दुनिया में दाखिल होते हैं। एक कहानी या कविता या नाटक तब तक कागज पर फैली स्याही से ज्यादा नहीं है; जब तक एक पाठक उन्हें सार्थक चित्रों के एक समूह में तब्दील नहीं कर देता" (रोज़ेनब्लाट, पृष्ठ 62)। इस अंतिम भाग में मैं कुछ सरल तरीकों पर चर्चा करूँगी; जिनके माध्यम से अध्यापक अपने विद्यार्थियों को किताबों की दुनिया में ले जा सकते हैं और उन्हें कागज पर फैली स्याही को सार्थक चित्रों में रूपांतरित करने में मदद दे सकते हैं।

बोल-बोल कर पढ़नाः बोल-बोल कर पढ़ना कक्षा की दैनिकचर्या का एक अभिन्न अंग होना चाहिए। बोल-बोल कर पढ़ने से बच्चों को बहुत कम उम्र से ही उच्चस्तरीय साहित्य से अवगत कराने का मौका मिलता है और इसमें किसी पाठ्य सामग्री की पठनीयता की फिक्र करने की जरूरत नहीं होती। इससे कक्षा में किताबों, विचारों और कहानियों के बारे में सृजनशील बातचीत पर चर्चा का मौका भी पैदा होता है।

हमारी ज्यादातर कक्षाओं में बच्चों को आपस में बात करने से हतोत्साहित किया जाता है। मगर, शोधों का निष्कर्ष है कि जिन कक्षाओं में साझा विचारों पर सृजनशील बातचीत की भरमार होती है; वहाँ बच्चों को अपनी मौखिक भाषा, शब्दावली, अर्थग्रहण क्षमता और साहित्यिक रुचि व परख विकसित करने के लिए बड़ी अनुकूल स्थितियाँ पैदा हो पाती हैं। बोल-बोल कर पढ़ने से अध्यापकों को यह दिखाने का मौका मिलता है कि अच्छे पाठक किस तरह पढ़ते हैं: अभिव्यक्ति और आवाज में उतार-चढ़ाव के साथ; जहाँ कुछ समझ में न आए तो रुक कर उस हिस्से को दोबारा पढ़ना; आगे देखना या यह अनुमान लगाना कि अब क्या होने वाला है; आदि।

साहित्य चर्चा: चाहे आप किताबों को बोल-बोलकर पढ़ें या ज्यादा उम्र वाले बच्चे खुद किताबें पढ़ें, कक्षा में साहित्यिक परख या साहित्यिक समझ विकसित करने के लिए कुछ समय तय करना जरूरी है। यह काम साहित्य-चर्चा का समय तय करके किया जा सकता है। यह ऐसा समय होना चाहिए जब हम ठहरकर किसी ऐसे पाठ पर चर्चा करें; जिसको हम पीछे पढ़ चुके हैं। मिसाल के तौर पर, इस दौरान हम इस कहानी के प्लॉट का विश्लेषण कर सकते हैं, या उसके किरदारों का या उसके परिवेश का या किताब की पूरी थीम का विस्तार से विश्लेषण कर सकते हैं। हम बच्चों की जिंदगियों के लिए किसी किताब की प्रासंगिकता पर चर्चा कर सकते हैं। इसके अलावा, हम बच्चों को उस पाठ पर नाना प्रकार के विश्लेषण, समालोचना या प्रतिक्रिया देने के लिए मदद दे सकते हैं। छोटे बच्चे बोलकर या अपनी कला, नाटक या शुरुआती अन्वेषणपरक लेखन चेष्टाओं के जरिए अपनी प्रतिक्रियाएँ दे सकते हैं। अध्यापकों को मालूम होना चाहिए कि किसी पाठ पर कोई 'सही' या 'गलत' प्रतिक्रिया नहीं होती। बच्चों को वह अभिव्यक्त करने की छूट देनी चाहिए; जो वे उस पाठ से गुजरने पर वाकई महसूस कर रहे हैं -चाहे वह उनकी अरुचि या नापसंदगी ही क्यों न हो।

लिखना: लिखने की शिक्षा प्रत्येक प्रारम्भिक भाषा एवं साक्षरता कक्षा का हिस्सा होनी चाहिए। फिलहाल हम बच्चों को केवल कॉपी में लिखना, हिज्जे और अक्षर बनाना ही सिखाते हैं। हम उन्हें यह बताना भूल जाते हैं कि नाना विधाओं में विभिन्न प्रकार के पाठकों और उद्देश्यों के लिए कैसे लिखा जाता है। जब कोई पाठ्यांश तैयार होता है; तब तक बच्चे काफी बड़ी कक्षाओं में पहुँच जाते हैं, वे बेहद औपचारिक ढर्रे पर लिखने लगते हैं और बच्चे की अभिव्यक्त या सम्प्रेषित करने की नैसर्गिक चाह से बहुत दूर जा चुके होते हैं। इसका विकल्प 'मुक्त लेखन' (फ्री राइटिंग) नहीं है; जिसमें बच्चों को अपनी कल्पना के आधार पर 'कोई भी चीज' लिखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है -अध्यापक की ओर से किसी भी तरह के मार्गदर्शन या फीडबैक के बिना। इसकी बजाय उन्हें मार्गदर्शनयुक्त लेखन यानी गाइडेड राइटिंग कराई जानी चाहिए। छोटे बच्चों के लेखन का मार्गदर्शन करने या उसको गाइड करने के लिए जरूरी है कि हम (क) उन्हें लिखने के अच्छे नमूनों से वाकिफ कराएँ; और (ख) उन्हें सही हिज्जे और सुलेख की चिंता से आजाद रखें। बेशक, हिज्जे और सुलेख सिखाना भी जरूरी है; मगर यह प्रक्रिया अभिव्यक्ति के समानांतर चले ऐसा जरूरी भी नहीं है; इन बातों पर जोर देने के लिए अन्य समय अवधियाँ तय की जा सकती हैं। मगर सवाल यह है कि बच्चों को दिखाने के लिए लेखन के अच्छे नमूने कहाँ ढूँढे जाएँ? इसमें क्या दिक्कत है, साहित्य तो है ही! जब अध्यापक बच्चों के सामने साहित्य पढ़कर सुनाते हैं और उस पर चर्चा करते हैं तो वे उसमें से कुछ पाठकों के लेखन का विश्लेषण करने के लिए भी खुद समय तय कर सकते हैं। उसमें पाठक ने हमारा ध्यान किस तरह बाँधे रखा? क्या यहाँ सस्पेंस पैदा करने की जरूरत है? क्या मनोभावों को व्यक्त करने के लिए भाषा का प्रयोग किया जाए? आदि। कक्षा में जिन तकनीकों पर चर्चा की गई है उनका प्रयोग करके साझा लेखन के अंश रचे जा सकते हैं -कई बच्चे (और अध्यापक) मिलकर एक लिखित सामग्री तैयार करें; बच्चों को स्वतंत्र रूप से लिखने के लिए (कला और आविष्कृत हिज्जे का प्रयोग करते हुए) भी अध्यापक के मार्गदर्शन और फीडबैक की मदद से प्रोत्साहित किया जा सकता है। बच्चे खुलकर यह अभिव्यक्त कर सकते हैं कि किसी पाठ के बारे में वे क्या महसूस करते हैं; या वे उस पाठ के किसी हिस्से को बदल सकते हैं (उदाहरण के लिए, उसका अंत, या नज़रिया); या वे बिल्कुल नया पाठ रचने के लिए उन तत्वों और तकनीकों का प्रयोग कर सकते हैं जिन पर पहले चर्चा की जा चुकी है। इन सम्भावनाओं की कोई सीमा नहीं है!

साहित्य और सम्बन्धित विषय शिक्षा का समावेशन: इसके लिए ऐसे शीर्षक केन्द्रित अध्याय रचे जा सकते हैं जिनसे सम्बन्धित साहित्य को पूरी कक्षा द्वारा पढ़ा जाए और विशेष रूप से ईवीएस की विषय सम्बन्धी शिक्षा के साथ उसे जोड़ा जाए। साहित्य हमेशा किसी चीज के बारे में होता है। यह 'बारे में' आमतौर पर ईवीएस पाठ्यक्रम के साथ आसानी से जोड़ा जा सकता है, उदाहरण के लिए एक

प्रस्तुति के अध्ययन, या इतिहास (जैसे, एक हजार साल पहले के बच्चों की जिंदगी), या विज्ञान (जैसे, मौसम, बीजों आदि के बारे में) की विषयवस्तु के साथ।

स्वतंत्र रूप से पढ़नाः अध्यापकों को हर सप्ताह अपनी कक्षा में 'खामोशी से पढ़ने' का समय भी तय करना चाहिए। उन्हें कोशिश करनी चाहिए कि बच्चों को विभिन्न प्रकार की किताबें मुहैया कराएँ (ताकि अलग-अलग बच्चों की रुचियों को सम्बोधित किया जा सके) और अलग-अलग स्तर की कठिनाई वाली किताबें मुहैया कराएँ। यदि कम उम्र के पाठक स्वतंत्र रूप से और सही ढंग से किताबें नहीं पढ़ पाते हैं, तो भी उन्हें किताब के पन्ने उलटने-पलटने, तस्वीरों को देखने-बूझने, इस बारे में अपने दोस्तों के साथ बात करने और इन किताबों को घर ले जाकर अपने परिजनों और आसपड़ोस के लोगों को दिखाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। अध्यापक बच्चों से अपने घर वालों को पढ़कर कहानी सुनाने के लिए और घरवालों से कहानियाँ इकट्ठा करके (परिवार या समुदाय में चलने वाले किस्से कहानियाँ आदि) उन्हें स्कूल में लाने के लिए भी बोल सकते हैं। इससे न केवल बच्चों में पढ़ने की आदत को बढ़ावा मिलेगा बल्कि घर और स्कूल के बीच समृद्ध और सार्थक सम्बन्ध विकसित करने का उपयोगी रास्ता भी खुलेगा।

ये प्रारम्भिक भाषा एवं साक्षरता शिक्षा को पुष्ट करने के लिए साहित्य के प्रयोग के सम्बन्ध में सिर्फ कुछ सुझाव हैं। मुझे यकीन है कि साहित्य के सदुपयोग के बारे में और भी बहुत सारे सुझाव दिए जा सकते हैं। जब आप खुद काम करेंगे और अपनी कक्षा में साहित्य की शक्ति व आनंद का अनुभव करेंगे और अपने विद्यार्थियों के जीवन में अनुभव करेंगे, तो आप (अध्यापक) खुद ऐसे बहुत सारे विचारों और विकल्पों से अवगत होते जाएँगे!

संदर्भ

क्ले, एम. (2002), कॉन्सेप्ट्स एबाउट प्रिंट, व्हाट हैव चिल्ड्रन लर्न्ड एबाउट दि प्रिंट लैंग्वेज? न्यूयार्क, हाईनमान।

फ्रेरे, पी. एवं मसेडो, डी. (1987), लिट्रेसी : रीडिंग दि वर्ड्स ऐण्ड रीडिंग दि वर्ल्ड, सांता बारबरा, सीए : प्रेगर।

गाल्दा, एल. (1998), मिरर्स ऐण्ड विन्डोज़ : रीडिंग ऐज़ ट्रांसफॉर्मेशन; टी. ई. रफायल एवं के. एच. आउ (सं.) लिटरेचर बेस्ड इंस्ट्रकशन : रीशेपिंग दि करिक्युलम (पृष्ठ 1-11), नारवुड, एम.ए. क्रिस्टॉफर-गॉर्डन में।

ल्यूकेन्स, आर. जे., स्मिथ, जे. जे., एवं कॉफेल, टी. एम. (2013), ए क्रिटिकल हैंडबुक ऑफ चिल्ड्रेन्स लिटरेचर, न्यू जर्सी, पीयर्सन।

नेशनल सेंटर फॉर चिल्ड्रेन्स लिटरेचर (एनसीसीएल), (2012), गाइड टू गुड बुक्स : क्राइटीरिया फॉर सेलेक्टिंग क्वॉलिटी चिल्ड्रेन्स बुक।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) (2005), नैशनल करिक्युलम फ्रेमवर्क, नई दिल्ली : एनसीईआरटी।

रोज़ेनब्लाट, एल. (2005), मेकिंग मीनिंग विद टेक्स्ट्स : सेलेक्टेड एसेज, न्यूयार्क : हाइनमान।

शैलजा मेनन

डॉ. शैलजा मेंनन अज़ीम प्रेम जी यूनीवर्सिटी के स्कूल ऑफ एजूकेशन विभाग में भाषा और साक्षरता के क्षेत्र में बतौर फैकल्टी काम कर रही हैं। इन्होंने यूनीवर्सिटी ऑफ मिशिगन, एन्न एरबॉर से 'भाषा, साक्षरता और संस्कृति' में डॉक्टरेट, मानव विकास और मनोविज्ञान की डिग्री एम. एस. यू. यूनिवर्सिटी-बडौदा और देहली यूनिवर्सिटी से हासिल की हैं। अज़ीम प्रेम जी यूनिवर्सिटी से पहले इन्होंने यूनिवर्सिटी ऑफ कोलेरेडो (बौल्डर) और जॉन्स यूनिवर्सिटी में भी काम किया हैं। इन्होंने भारत और अमेरिका में बच्चों, शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों के साथ आरम्भिक साक्षरता के क्षेत्र में काम किया है। ये 'कथावाना' नामक वार्षिक बाल साहित्य उत्सव की एक प्रमुख कार्यकर्ता हैं। ये बच्चों, शिक्षकों एवं शिक्षक प्रशिक्षकों में भाषा, साहित्य और बाल-साहित्य के प्रति लगाव पैदा करने में बेहद दिलचस्पी रखती हैं और इसको बढ़ावा देने वाले विभिन्न कार्यक्रमों के साथ जुड़ी हैं। सम्पर्क- shailaja.menon@apu.edu.in

वाचिकता और साक्षरता के प्रसंग में बाल साहित्य

— महेंद्र कुमार मिश्र
अनुवादः योगेंद्र दत्त

बच्चे अपने सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में ही बेहतर सीखते हैं। यदि उन्हें इनसे काट कर सिखाने के प्रयास किए जाते हैं, तो वे केवक एक राजनैतिक औजार भर होकर रह जाते हैं। इस लेख में महेन्द्र मिश्र वाचिक समाज की परम्पराओं का हवाला देते हुए बताते हैं कि किस्से कहानियाँ बच्चों को कल्पनालोक से सोचने और तर्क करने की दुनिया में ले जाते हैं। वाचिक कहानियाँ सांस्कृतिक संदर्भ से उर्जित होती हैं और समृद्ध मानव मूल्यों को सींचती हैं जोकि, ऐसे समेकित विश्व दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती हैं, जहाँ मस्तिष्क और पदार्थ, एक दूसरे से कटे नहीं होते। जबकि हमारी स्कूली शिक्षा व्यवस्था बच्चों को इन सामाजिक संदर्भों से काट देती है। मिश्र ने इस लेख में सीखने में सांस्कृतिक संदर्भों के महत्त्व पर खासा जोर देते हुए पढ़ना-लिखना सीखने में इनके इस्तेमाल की जोरदार वकालत की है।

बच्चों की वाचिक संस्कृति

एक वाचिक समाज में किस्से-कहानियाँ सुनना और सुनाना बच्चों की पहली पाठशाला होती है। बच्चे के मस्तिष्क में कल्पनाओं को ठोस आधारशिला यहीं से मिलती है। बचपन में ही बच्चे अपने दृश्य और अदृश्य जगत को समझने के लिए तरह-तरह के और असंख्य सवाल पूछते और बूझते हैं।

अभिभावकों, खासतौर से उम्रदराज़ लोगों के पास अच्छा-खासा जीवन अनुभव होता है जिसे वे किस्से-कहानियों के रूप में वाचिक पद्धति से अपनी नई पीढ़ियों को सौंपते जाते हैं।

वाचिक परम्परा किसी भी संस्कृति की उस स्मृति का वाहक होती है, जो समय और काल, लिंग और आयु की सीमाओं के परे उस समुदाय के सभी सदस्यों की साझा स्मृति होती है। सीखने की प्रक्रिया पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती है और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक बढ़ती जाती है।

वाचिक समाज के पास अनुभवों का एक ऐसा खजाना होता है, जिसे वह कहानियों, किस्सों, जनश्रुतियों, मिथकों, कहावतों और पहेलियों के रूप में व्यक्त करता है। ये सारी चीजें मानव अनुभव का सार होती हैं। कहने की जरूरत नहीं कि समाज के बुजुर्ग, बच्चों के लिए लगातार उपयुक्त कहानियाँ रचते रहते हैं। वाचिक समाज में ऐसी असंख्य कहानियाँ, मिथक और किंवदंतियाँ होती

हैं जो बच्चों की जरूरतों को पूरा करने के लिए मानव मस्तिष्क द्वारा ही गढ़ी गई होती हैं। इन्हें हैतुकी कहानियाँ कहा जाता है। उदाहरण के लिए, साओरा समुदाय में इस बारे में भी एक कहानी प्रचलित है कि कौवा काला और बगुला सफेद ही क्यों होता है। यह कहानी किसी बच्चे के एक मासूम सवाल के उत्तर या साधारण कल्पना से ज्यादा नहीं है। मगर इस तरह की हैतुकी कहानी के पीछे ज्ञान का जो भंडार छिपा होता है वह काल्पनिक यथार्थों को अपने भीतर समेटे रहता है। यह रचनाशीलता मानव मस्तिष्क से पैदा होती है और उसमें ऐसी तर्कशीलता होती है जो बच्चे के मस्तिष्क को आकार देने के लिए उपयुक्त है। वह बच्चे को कल्पनालोक से सोचने और तर्क करने की दुनिया में पहुँचा देती है। किसी कहानी में कितनी फैंटेसी छिपी हुई है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जरूरी बात यह है कि वो बच्चों की बुद्धि और जिज्ञासा को संतुष्ट करने के लिए अनिवार्य हो। यथार्थ को कल्पना और फैंटेसी के साये में सींचा जाता है, चाहे वह कोई लोककथा हो या फिल्म हो। फैंटेसी की दुनिया ने यथार्थ के जगत को नहीं बल्कि हैरी पॉटर को घर-घर का नायक बना दिया है। फैंटेसी की बैसाखियों पर खड़ा संदेश बच्चों को यथार्थ के मुकाबले ज्यादा स्वीकार्य दिखाई पड़ता है। सपने देखना और कल्पना करना बाल केंद्रित क्रियाएँ होती हैं, जबकि यथार्थ वयस्क केन्द्रित होता है।

बच्चों के वाचिक साहित्य की विधाएँ

वाचिक कहानियाँ सीखने का सबसे अच्छा माध्यम होती हैं। ये कहानियाँ वातवरण से जुड़ी होती हैं। लिहाजा, इन कहानियों में प्रकृति-मानव सम्बन्धों की अपरिमित समृद्धि भरी होती है। वाचिक कहानियाँ सांस्कृतिक संदर्भ से ऊर्जित होती हैं और समृद्ध मानव मूल्यों को सींचती हैं जो कि एक ऐसे समेकित विश्व दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती हैं जहाँ मस्तिष्क और पदार्थ एक दूसरे से कटे नहीं होते।

स्थानीय किंवदंतियाँ पहाड़ों, नदियों, जंगलों, मन्दिरों, महलों और ऐसे दूसरे स्थानों के नाम से जोड़ दी जाती हैं, जो निकट अतीत में उस किंवदंती में आने वाले किसी व्यक्ति, घटना या स्थान से जुड़े होते हैं। ये किंवदंतियाँ बच्चों को किसी जगह के इतिहास और भूगोल के बारे में पढ़ाने का सबसे बढ़िया तरीके होती हैं।

दूरस्थ अतीत से जुड़े मिथकों को सच मान लिया जाता है। सृष्टि के ज्यादातर मिथक पर्यावरण और पंचतत्त्व की दुनिया से बड़े गहरे तौर पर जुड़े हुए हैं। आधुनिक बच्चे प्रकृति की गोद से महरूम हैं। मिथक या पौराणिक कथाएँ बच्चों को अपने आसपास के दृश्य और अदृश्य जगत् को समझने और प्रकृति के साथ एक सार्थक सम्बन्ध स्थापित करने में मदद देती हैं। इससे बच्चों को एक टिकाऊ दुनिया की खातिर पर्यावरण के साथ अर्थपूर्वक जुड़ने में मदद मिलती है।

पहेलियाँ और मुहावरे बच्चों के साहित्य की दो ऐसी विधाएँ हैं जो उन्हें पाठ और संदर्भ का अर्थ बूझने में मदद करती हैं। बच्चों को सैकड़ों पहेलियाँ मालूम होती हैं जो वे अपने संगी-साथियों या बुजुर्गों से सीखते हैं।

लोरियाँ और खेल-कूद के गीत लोक साहित्य की दो प्रमुख विधाएँ हैं, जो बच्चों के मानसिक विकास में खूब इस्तेमाल की जाती हैं। माएँ और दादी-नानियाँ नन्हे बच्चों को बहलाने के लिए लोरियाँ गाती हैं, तो इससे बच्चों को भी सुनने का और वह भी लयपूर्वक सुनने का अभ्यास मिलता है। इसी तरह, खेल-कूद और खेलों से जुड़े गीत दो महत्त्वपूर्ण विधाएँ हैं, जो बच्चों के समाजीकरण, नेतृत्व विकास, सामूहिक व्यवहार, पारस्परिक समझदारी, सहिष्णुता, हताशा की स्थितियों से निपटने, साइकोमोटर विकास और व्यक्तित्व विकास में मदद देती हैं। खेलों से रेखागणित और गणित सीखने में भी भरपूर मदद मिलती है। गिनती, आकार व आकृति, जोड़ना और घटाना बच्चों के खेलों का स्वाभाविक हिस्सा होते हैं। कुछ खेल लड़कियों के लिए माने जाते हैं और कुछ लड़कों के लिए। कुछ खेल चारदीवारी के भीतर खेले जाते हैं और कुछ खुले मैदान में (आउटडोर) खेले जाते हैं। ये सारे खेल और इनसे जुड़े गीत खेलों की भावना में एक सार्थक इजाफा करते हैं और बच्चे अपनी क्रियाओं को शब्दों के साथ जोड़कर देखने लगते हैं। इस तरह वे करना और बोलना, दोनों साथ-साथ सीखते जाते हैं।

भारतीय समाज में बच्चों के शैक्षिक संसाधन के रूप में इतने विशद ज्ञान-भंडार के होते हुए भी हमारी स्कूल व्यवस्था इन खेलों को बढ़ावा नहीं देती। संभवतः समुदाय खुद अपनी ज्ञान व्यवस्थाओं को स्कूली पाठ्यचर्यात्मक ज्ञान से कमतर मानता है। शायद इसीलिए समुदाय अपनी पारम्पररिक शैक्षिक व्यवस्था के मुकाबले स्कूलों में मिलने वाली औपचारिक शिक्षा पर ज्यादातर आश्रित रहता है। विडम्बना यह है कि शिक्षाविद् और मनोवैज्ञानिक, भाषाविद् और शिक्षक, सभी शैक्षिक संसाधनों के रूप में बच्चों के सांस्कृतिक संदर्भ को बहुत ऊंचा स्थान देते हैं। बच्चे के अनुभव और ज्ञान का

विभाजन स्कूल में आकर होता है। बच्चे के अनुभव से जोड़े बिना पढ़ते और लिखते हुए सीखने की परम्परा स्कूल को समुदाय से काट देती है। ज्ञान पहले से मौजूद रहता है और समुदाय खुद ज्ञान की रचना करता है। यही ज्ञान स्कूली ज्ञान की आधारशिला होना चाहिए; क्योंकि स्कूल भी गाँव के मानव संसाधनों के विकास का माध्यम होता है। यानी बिना समझे और बिना चिंतनशील सोच के केवल पढ़ना और लिखना ही काफी नहीं होता। यह तो हम सभी जानते हैं कि इन्हीं विभाजनों के कारण किस तरह स्कूलों ने बच्चों को सीखने की बहुत सारी चीजों से वंचित कर दिया जाता है। ऐसे में उनकी शिक्षा निरर्थक बन जाती है।

समाज में इतनी विस्तृत समृद्ध और वाचिक परम्परा के होते हुए भी अध्यापक इन भाषायी संसाधनों को बच्चे के सामाजिक और मानसिक विकास के लिए अनिवार्य नहीं मानते। जब अभिभावक, गायक, संगीतकार, चित्रकार, बढ़ई, कुम्हार और अन्य कारीगर पढ़ने और लिखने पर आश्रित हुए बिना सामाजिक ज्ञान की रचना करते हैं, तो यह समझना लाजिमी हो जाता है कि बच्चों की दुनिया के अनुभव और ज्ञान को पाठ्यचर्यात्मक अनुभव और ज्ञान के साथ जोड़ना कितना महत्त्वपूर्ण है।

बाल साहित्य आमतौर पर दो दायरों में मिलता है। एक दायरा कक्षा है जहाँ बच्चों के अनुभव और ज्ञान की पड़ताल के अलावा इसका मुख्य उद्देश्य पढ़ना और लिखना सिखाना होता है। दूसरा मकसद यह होता है कि बच्चों को पढ़ने, मजा लेने और समझने के लिए साहित्य उपलब्ध कराया जाए। कक्षा में इस्तेमाल होने वाले पहले किस्म के साहित्य का उद्देश्य यह होता है कि बच्चे पढ़ने, लिखने और बोलने में सटीक भाषा कौशल विकसित करें। ये सारे संकेतक अध्यापक-केंद्रित होते हैं क्योंकि अध्यापकों का मुख्य उद्देश्य बच्चों को पढ़ना और लिखना सिखाना होता है न कि पाठ के साथ बच्चों के अनुभव के आधार पर ज्ञान मुहैया कराना। अनजाने में ही अध्यापक पढ़ना और लिखना सिखाते हुए विद्यार्थियों पर हावी हो जाते हैं और कई बार व्याकरण के नियम थोपने के लिए निरंकुश अंदाज भी अपना लेते हैं।

प्राथमिक कक्षाओं में बच्चे वास्तविक जगत के ज्यादा निकट होते हैं और उन्हें अपनी पसंद के साहित्य की जरूरत होती है। बच्चों को क्या पसंद आता है? वयस्क अध्यापकों का कहना है कि वे कहानियाँ, गीत, नाटक, तस्वीरें और खूब बोलना पसंद करते हैं। क्या ये सारी गतिविधियाँ उस समय भी चलती हैं जब कक्षा में हम उन्हें पढ़ाते हैं? वयस्क-केंद्रित पाठ्यचर्या के रचनाकारों और बाल-केंद्रित पेशेवरों द्वारा लिखी गई पाठ्य सामग्री से बच्चों को अपने अनुभव व तर्कशीलता, कल्पना व जिज्ञासा को सीखने की प्रक्रिया के साथ जोड़ने में किस तरह मदद मिलती है? अध्यापकों का सारा जोर पाठ्यक्रम पूरा कराने पर केंद्रित होता है और अंततः वे रटंत के माध्यम से पाठों को पढ़ना और लिखना सिखाने लगते हैं। यह पद्धति देश भर में प्रचलित है। बच्चों की रचनाशीलता और सोच के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। बच्चों के अनुभव और ज्ञान को नजरअंदाज कर दिया जाता है और वयस्क केन्द्रित पढ़ाने-सीखने की प्रक्रियाओं में समझने की प्रक्रिया निरुद्ध हो जाती है।

एन.सी.एफ. 2005 में परिवेश में उपलब्ध स्थानीय ज्ञान पर जोर दिया गया है जहाँ से बच्चे जुड़े हुए होते हैं। अध्यापक और अभिभावक, दोनों को ऐसा लगता है कि स्कूली ज्ञान कोई ऐसी चीज है, जो बच्चों के पास पहले से उपलब्ध मौखिक ज्ञान और अनुभव से ऊँचे दर्जे की होती है। यह वाचिकता पर लिखित सामग्री के वर्चस्व की राजनीति है।

अध्यापक और अभिभावक प्रायः उन सिद्धांतों और व्यवहारों के अनुसार नहीं चलते जिनसे अकसर शिक्षाविद् चलते हैं। शिक्षाविद् आमतौर पर व्यवस्था से मिले महान शिक्षाशास्त्रियों का अनुसरण करते हैं, भले ही वे शिक्षा के वैश्विक सिद्धांतों से कितने भी अवगत हों या अपने आनुभविक जगत् का उनके पास कैसा भी जैविक अनुभव और ज्ञान हो। स्कूलों में बच्चों का साहित्य राजकीय शिक्षा व्यवस्था में निहित राजनीतिक विचारधाराओं से निर्देशित होता है, ताकि शासक-वर्ग अपनी सत्ता कायम रख सके। लिहाजा यह व्यवस्था पाठ्यचर्या के लिए वैसे ही ज्ञान को प्राथमिकता देती जो उसके शासन को कायम रखने में मदद दे सके है। ऐसी स्थिति में बच्चे सबसे ज्यादा नुकसान में रहते हैं और पाठ्यचर्या रचनाकार और अध्यापक राज्य की राजनीतिक विचारधाराओं के उपकरण मात्र बन जाते हैं। बच्चों को अपने सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण से मिले ज्ञान की निधि का प्रयोग करने की छूट नहीं मिलती। राजनीतिक विचारधाराओं के अनुसार चलने वाली शिक्षा में बच्चों की स्वतःस्फूर्त शिक्षा अवरुद्ध हो जाती है और वे भी राजकीय विचारधारा के वाहक बन जाते हैं। सांस्कृतिक लोकतंत्र ने दुनिया

को समतापरक स्तरीय शिक्षा मुहैया कराई है मगर पाठ्यक्रम प्रायः सम्बन्धित राजनीतिक विचारधारा के उपकरणवादी वाहक बन जाते हैं और सीखने की स्वाभाविक प्रक्रिया अस्त-व्यस्त हो जाती है।

उदाहरण के लिए, थाईलैंड के स्कूलों में बच्चे लामाकियेन (रामायण का थाई संस्करण) को राजनीतिक विचारधारा के हिस्से के तौर पर पढ़ते हैं; जबकि पाकिस्तान में बच्चे दक्षिण एशिया की सांस्कृतिक विरासत से अनजान रह जाते हैं। यथार्थ पर कमोबेश राजकीय विचारधाराओं का आवरण थोप दिया जाता है। बच्चों के लिए इस तरह की विचारधाराओं से प्रेरित नैतिकता की शिक्षा से ज्यादा खतरनाक और कुछ नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में बच्चों को एक संकीर्ण दृष्टि से सत्य को देखना सिखा दिया जाता है।

सबसे बढ़िया बाल साहित्य वह हो सकता है, जो बच्चे के उसी वातावरण से पैदा होता है, जिससे वे सबसे ज्यादा सीखते हैं और अपना ज्ञान रचते हैं। वे अपने मस्तिष्क को अपने माहौल के साथ जोड़ देते हैं और विरासत में मिले ज्ञान के हिस्से के तौर पर उसका अर्थ ग्रहण करते हैं।

ज्यादातर बाल साहित्य बच्चों को मुख्य किरदारों के रूप में लेते हुए व्यक्तिगत धरातल पर लिखा जाता है। इस साहित्य के माध्यम से बच्चा अपने बचपन के बारे में किस हद तक सपने देख सकता है? बाल साहित्य के एक वयस्क केंद्रित लेखक को अपनी कहानी और पाठों में बाल केंद्रित तत्वों को स्थिर करना बहुत मुश्किल महसूस होता है।

बाल साहित्य को बच्चों के स्थानीय ज्ञान के सहारे समृद्ध करना बहुत आवश्यक है। दुनिया भर में इस तरह के प्रयासों से बच्चों को उनके भाषायी और सांस्कृतिक अधिकार मिले हैं। विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों, संस्कृतियों और भाषाओं वाले बच्चों के पास अपनी ज्ञान व्यवस्थाएँ होती हैं जिनमें वे खुद को ढालते है। कम से कम प्रारम्भिक अवस्था में तो उन्हें अपने वातावरण से ही सीखना चाहिए और किसी भी सूरत में स्कूल और अध्यापकों को विचारधाराओं के नाम पर बच्चों के अनुभव को अवरुद्ध करने का अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए। भारतीय स्कूलों की स्थितियों में सीखने की प्रक्रिया बच्चों के अनुभव व ज्ञान के अन्वेषण की बजाय पढ़ने और लिखने पर आधारित होती है। जब तक बच्चों को अपने स्वाभाविक अनुभव और ज्ञान को सींचने का अवसर नहीं मिलेगा, तब तक बच्चों की बौद्धिक क्षमता में सुधार की उम्मीद नहीं की जा सकती।

बेशक, बहुत सारे प्रसिद्ध लेखकों ने बहुत सारा बाल साहित्य रचा है। स्कूलों में बहुत सारी अच्छी लाइब्रेरी मौजूद हैं। मगर क्या हम इस बात का आश्वासन दे सकते हैं कि भारतीय स्थितियों में अध्यापक खुद लाइब्रेरी का इस्तेमाल करते होंगे? इस बात पर सवाल उठाना जरूरी है कि भारतीय प्राथमिक स्कूलों के अध्यापक खुद बढ़िया बाल साहित्य का अध्ययन क्यों नहीं करते। यह भी सोचने वाली बात है कि अध्यापक बाल साहित्य के रचनाकार क्यों नहीं बन पाते? अकसर ऐसा होता है कि अनौपचारिक स्थितियों में तो बच्चों को कोई कहानी बहुत आसानी से पसंद आ जाती है मगर जैसे ही वह पाठ्यपुस्तक का हिस्सा बनती है तो उसकी सारी सुंदरता काफूर हो जाती है। क्यों?

हो सकता है मेरी समझ गलत हो; मगर मेरा ख्याल है कि भारतीय समाज वाचिक परम्पराओं वाला समाज रहा है; इसलिए अध्यापक या पढ़े-लिखे लोग भी अपने घरों में पुस्तकालय बनाने की आदत विकसित नहीं कर पाते या पढ़ने की आदत कायम नहीं रख पाते। जिसे समाज बहुत मान्यता नहीं देता, उसे स्कूल में भी महत्त्वपूर्ण जगह मिलने की उम्मीद नहीं की जा सकती। अभिजात्य समाज में बच्चों को श्रेष्ठ साहित्य मुहैया कराने पर भी ज्यादा जोर नहीं दिया जाता। शास्त्रीय पाठ्यचर्या के बाद तथा पाठ्यचर्या अध्ययनों की व्यवहारवादी धारा के बाद पाठ्यचर्या में आनुभविक शिक्षा पर जोर दिया जाने लगा है; मगर हमारे बहुत सारे अध्यापकों का दिलोदिमाग अभी भी उसी शास्त्रीय युग में अटका हुआ है और वे उन्नीसवीं शताब्दी के पाठ्यचर्या अध्यापन के टोटकों से चिपके हुए हैं। यह बात ग्रामीण पाठशालाओं में साफ देखी जा सकती है, जहाँ भौतिक सुविधाएँ चाहे कितनी भी अच्छी क्यों न हों, बौद्धिक पक्ष अभी भी पिछड़ा दिखाई देता है। इन स्कूलों के अध्यापक पढ़ाने व सीखने के सिद्धांतों के अधपके ज्ञान की वजह से भ्रमित दिखाई पड़ते हैं।

ज्ञान के स्रोत के रूप में और शिक्षा के उपभोक्ता के रूप में समुदाय के पास इस बात का पूरा अधिकार है कि वह अपने ज्ञान को अपनी बस्तियों में पुनर्निर्मित करें और उसे यह मानने का पूरा हक है कि यह ज्ञान ही उसकी दुनिया का केन्द्र है।

इसकी बजाय अध्यापक और पेशेवर भी वैश्विक भाषा राजनीति के जाल में फँस जाते हैं और एक ऐसी पराई भाषा की हिमायत करने लगते हैं, जो बच्चे की मातृभाषा नहीं होती। फिनलैंड या रूस का कोई भी चेतनाशील व्यक्ति कोई ऐसी भाषा सीखना या सिखाना नहीं चाहेगा, जो वहाँ के बच्चों को नहीं आती है। यह बच्चों के मानवाधिकारों का हनन है। बच्चों का साहित्य सबसे पहले स्थानीय साहित्य होना चाहिए। अध्यापकों, अभिभावकों और बच्चों को स्थानीय भाषा में कहानियों की किताबें तैयार करनी चाहिए और इसके बाद उन्हें ज्यादा से ज्यादा भाषाओं में लिखा जाना चाहिए।

समुदाय की कहानियाँ, बच्चों के अनुभव, कहानियाँ सुनना, संख्याओं की कहानियाँ और पशु-पक्षियों की कहानियाँ शुरुआती अवस्था में बाल साहित्य के लिए सबसे अच्छा संसाधन हो सकती हैं। इस अवस्था में समुदाय के लोग किताब तैयार करने में भरपूर मदद दे सकते हैं।

छत्तीसगढ़ के 100 स्कूलों में कथा-वाचन यानी कहानी सुनाने का उत्सव आयोजित किया गया, जिसमें 9000 विद्यार्थियों और 200 कथा वाचकों ने हिस्सा लिया। इस कार्यक्रम के जरिए स्थानीय सांस्कृतिक संदर्भ से अद्‌भुत कहानियाँ सामने आईं। इस अवसर पर कहानी सुनाने वालों ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक यथार्थ की स्थानीय विविधता को भी उजागर किया। दुर्भाग्यवश, भारतीय स्कूल व्यवस्था में हम केवल चंद लोकप्रिय कहानियों पर ही आश्रित रहते हैं। ऐसी कहानियों की संख्या 20 से ज्यादा नहीं होगी। इसमें पहली कहानी कौवे या घड़े वाली है, अगली शायद बंदर और मगरमच्छ की, कछुए और खरगोश की होगी और फिर शायद शेर और चूहे वाली और इसी तरह कुछ अन्य कहानियाँ होंगी।

एक तरफ तो स्कूल में पढ़ाने वाले अध्यापकों और विद्यार्थियों के पास मुट्‌ठी भर लिखित कहानियाँ हैं और दूसरी तरफ आम समाज में बिना पढ़े-लिखे मर्द-औरतों के पास सैकड़ों रोचक कहानियों का भंडार बिखरा पड़ा है! इस बात का पता कैसे लगाया जाए कि कौवे और घड़े की कहानी ही बच्चे की हाजिरजवाबी और बुद्धि को मापने का सबसे अच्छा पैमाना है और कहीं ऐसा तो नहीं कि अध्यापक इस कहानी के जरिए बच्चों को हाजिरजवाबी और बुद्धिमानी का पाठ पढ़ाने की गलतफहमी पाले रहते हों! या फिर आप ऐसी असंख्य कहानियों को ले सकते हैं जो बहुत सारे लोगों द्वारा बहुत सारी भाषाओं में और गाँव के बहुत सारे सांस्कृतिक निरूपणों के साथ कही गई विविध स्थितियों में अलग-अलग बौद्धिक आयामों को दर्शाती हैं। भारतीय ग्रामीण स्कूलों में इन कहानियों की दुनिया अभी भी काफी हद तक पड़ताल के बाहर छूटी हुई है और सारा जोर केवल लिखने के कौशल पर दिया जा रहा है। बहुत सारी हैतुकी कहानियाँ जो अपेक्षतया बच्चों की जिज्ञासा को संतुष्ट करती हैं, वे वयस्कों के मस्तिष्क में भी दबी रह जाती हैं, उनका इस्तेमाल ही नहीं हो पाता। भला कौवा हमेशा काला ही क्यों होता है? या मुर्गा सुबह ही बांग क्यों देता है? दुनिया में सिर्फ एक ही सूर्य क्यों है? भालू केले के पेड़ को गले से क्यों लगाता है? गिलहरी की पीठ पर तीन लकीरें ही क्यों होती हैं? आदि। इस दिशा में बढ़ने के लिए कुछ शुरुआती उदाहरण और सवाल हो सकते हैं। ऐसी हजारों कहानियाँ हैं, जो बच्चों के ऐसे सवालों के जवाब दे सकती हैं। आखिरकार ये वही तो कहानियाँ हैं, जिनमें उस सांस्कृतिक जैव विविधता की ताकत छिपी हुई है; जिसमें बच्चों का जीवन-जगत् स्थित है और जिनके जरिए वे अपने ईद-गिर्द की ज़िंदगी के अर्थ और मूल्य समझ सकते हैं।

पढ़ने और लिखने के कौशल को संदर्भ से काट देना एक बहुत बड़ी भूल है जिसको मौजूदा शिक्षा व्यवस्था बेतहाशा संरक्षण दे रही है। बच्चे उद्‌देश्य, संदर्भ और अर्थ के बिना पढ़ने और लिखने की विकृतियों से जूझ रहे हैं। अध्यापक केन्द्रित शैक्षिक व्यवहार बाल केन्द्रित शिक्षा को समझने में लाचार हैं। इसके चलते बच्चे अपेक्षित स्तर तक सीख नहीं पाते और असमानता पैदा होती है।

जब हम गाँव-देहात के किस्से कहानियाँ सुनाने वालों को सुनते हैं तो इन मौखिक कथाओं की समृद्धि और सम्पन्नता को देखकर अभिभूत हो जाते हैं। उन्हें कोई कहानी कहने को नहीं कहता। अगर कभी उन्हें बुलाया भी जाता है, तो वे इस बात पर हैरानी ही जताते हैं कि पूरी ज़िंदगी में उन्हें कभी स्कूल में कहानी सुनाने के लिए बुलाया ही नहीं गया। मगर उन्हें आदर सहित उनके बच्चों को अपनी मौखिक कहानियाँ सुनाने के लिए बुलाया गया था! यह गाँव के ऐसे बुजुर्गों के लिए एक भावनात्मक क्षण था, जिनको लोककथाएँ सुनाने के लिए आमंत्रित किया गया था। यह भारतीय ज्ञान-व्यवस्था का अन्वेषण है, जो कि बुजुर्गों में प्रचुर मात्रा में बिखरा हुआ है, मगर हमारे स्कूलों में उसे अछूत माना जाता है।

स्थानीय लोक कथाओं के जरिए बाल केन्द्रित शिक्षा के महत्त्व को

समझने के लिए ओडिशा और छत्तीसगढ़ के कुछ उदाहरणों से मदद मिल सकती है। जब ओडिशा सरकार ने जनजातीय भाषाओं में बहुभाषी शिक्षा की व्यवस्था अपनाई, तो मुख्य जोर इस बात पर था कि समुदायों को शिक्षा से जोड़ा जाए और ज्ञान की निधियों को इकट्ठा किया जाए। ग्राम समुदायों से लोक कथाएँ और किस्से इकट्ठा किए गए और ग्रामीण कथावाचकों ने कथावाचन उत्सवों में आकर कहानियाँ सुनाई। जिस समय कहानियाँ सुनाई जाती थीं, उसी समय उन्हें लिख भी लिया जाता था। इसी तरह बहुत सारी कथा-पुस्तकें व ऑडियो कहानियाँ तैयार की गईं। कक्षाओं में इन कहानियों का इस्तेमाल किया गया और बच्चों को अपनी भाषा में अपनी सांस्कृतिक कहानियाँ सुनने को मिलने लगीं। बाद में इन्हीं कहानियों को राज्य की राजभाषा में बच्चों के सामने पेश किया गया। मातृभाषा में वाचिक शिक्षा से सांस्कृतिक संदर्भ के माध्यम से उद्देश्य और अर्थ के साथ लिखने और पढ़ने का सिलसिला शुरू हुआ। इससे बच्चों और माँ-बाप को यह समझने में मदद मिली कि किस तरह उनकी वाचिक कहानियों को भी स्कूलों में लिखित सामग्री के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। यह एक मुख्य विचार था जिसके चलते बच्चों को सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील कक्षा परिवेश मुहैया कराया गया। बच्चों को इन कहानियों में अपने अनुभव और ज्ञान की झलक दिखाई दी और वे सक्रिय रूप से उनमें हिस्सा लेने लगे। अध्यापकों ने भी बच्चों के अंतर्निहित अनुभवों को जाना। आदिवासी और ग्रामीण बच्चे अपने इलाके के पशु-पक्षियों, फलों और पेड़ों से भली-भाँति अवगत थे लिहाजा वे अपने अध्यापकों के साथ इन कहानियों पर मजे से चर्चा कर सकते थे और इस तरह चुप्पी की संस्कृति को तोड़ने में सफलता मिली।

छत्तीसगढ़ के प्राथमिक स्कूलों में भाषा अैर शिक्षा के हिस्से के तौर पर बिग बुक को लागू करने से प्रारम्भिक कक्षाओं में ही पढ़ने और लिखने का कौशल दिखाई पड़ने लगा। मुख्य जोर इस बात पर था कि कक्षा एक और कक्षा दो में ही बच्चों के भीतरी जगत को बाहर के जगत् से जोड़ा जाए। बच्चों ने हिन्दी में लिखी बिग बुक को पढ़ा मगर उन कहानियों को छत्तीसगढ़ी, सरगुजिया और हलगी आदि भाषाओं में कहकर सुनाया। बच्चे इन कहानियों को अपनी मातृभाषा में देख सकते थे। दूसरे दिन बिग बुक की उन्हीं कहानियों को चित्रों और वाक्यों की मदद से पढ़ाया गया और अध्यापक ने बच्चों को अपने बाद चित्रों को देखकर वाक्य पढ़कर सुनाने के लिए मदद दी।

दूसरे दिन बच्चों ने बोलचाल की हिन्दी सीखी और उनके साथ बिग बुक के मुख्य शब्दों पर चर्चाएं आयोजित की गईं। बच्चों ने अपने निजी अनुभव व्यक्त किए और अध्यापकों ने धैर्यपूवक हर बच्चे की बात सुनी। तीसरे दिन अध्यापक ने बिग बुक दिखाते हुए एक-एक बच्चे से कहानियाँ पढ़कर सुनाने के लिए कहा। जवाब में एक-एक करके बच्चों ने बाएं पन्ने पर बने चित्रों और दाएं पन्ने पर लिखे वाक्यों को अनुमान के आधार पर एक साथ जोड़ते हुए कहानियाँ पढ़कर सुनाना शुरू किया। बच्चों को कक्षा एक के एकदम शुरुआती दिनों से ही इक्का-दुक्का वाक्य पढ़ने का आत्मविश्वास मिला और इससे अध्यापकों को यह महसूस हुआ कि अगर मौका दिया जाए तो बच्चे तेजी से सीख सकते हैं। चौथे दिन अध्यापक ने फिर से बिग बुक को पढ़कर सुनाया। उन्होंने बिग बुक के एक वाक्य को बोर्ड पर लिखा और बच्चों से एक-एक करके उस वाक्य को पढ़कर सुनाने और उसमें आए शब्दों को पहचानने को कहा। बिना खास मुश्किलों के बच्चों ने वाक्यों में आए शब्दों को पहचान लिया और पढ़कर सुनाया। अब किताब में लिखे शब्दों को पहचानने का खेल शुरू हुआ और बिना किसी हिचकिचाहट और भ्रम के बच्चों ने शब्दों को पहचानना शुरू कर दिया। उन्हें चॉक बोर्ड पर भी शब्दों को लिखने के लिए कहा गया और वे इसमें सफल भी रहे।

यहाँ मैं इस बात को जरूर दोहराना चाहूँगा कि समुदाय से जो कहानियाँ इकट्ठा की गईं वे एक पाठ्यपुस्तक में तब्दील हुईं और इसे प्रारंभिक पठन अभ्यास के लिए तैयार किया गया था।

कक्षा एक और दो में बिग बुक के इस्तेमाल की छोटी-सी प्रक्रिया से अध्यापकों को यह पता चला कि मातृभाषा में बोलने और सुनने से बच्चों को किसी पाठ को समझने में कितनी मदद मिलती है। वे कहानी में आए किरदारों, स्थानों और घटनाओं को अपने अनुभव के साथ जोड़ने लगते हैं और अपने वातावरण में कहानियों को जगह देने लगते हैं। वे मातृभाषा में और हिन्दी, दोनों भाषाओं में अपने अध्यापकों और संगी-साथियों को कहानियाँ सुनाते हैं। उन्होंने तस्वीरों को भी देखकर दाएँ और बाएँ पन्ने पर तस्वीरों और वाक्यों को एक दूसरे के साथ जोड़कर पढ़ना शुरू किया। वे इस बात का अनुमान लगाने लगे कि वाक्यों का क्रम किसी ऐसी घटना से जुड़ा हुआ है, जिससे वे अवगत हैं। उन्होंने वाक्यों में सम्बन्धित शब्दों को भी पहचान लिया। गौर करने की बात है कि यह एक्सरसाइज ऐसे अध्यापकों को बहुत पसंद नहीं आ रही थी, जो पढ़ने

और लिखने की प्रचलित पद्धति के ही हिमायती हैं। मैंने चॉक बोर्ड पर हिन्दी में कहानी लिखी। इसके बाद मैंने कहानी को फिर से उनके सामने पढ़कर सुनाया। फिर मैंने अध्यापकों को एक-एक करके वाक्यों के सहारे कहानी पढ़ने को कहा। अध्यापकों ने वाक्यों से कहानी का अनुमान लगाया और उनमें से 90 प्रतिशत उड़िया लिपि में लिखी मगर हिन्दी भाषा की कहानी को पढ़ने में सक्षम पाए गए। मैंने उनसे पूछा कि वे एक ऐसी लिपि में लिखी कहानी को कैसे पढ़ पाए जिसको वे अभी तक नहीं जानते थे? उन्होंने कहा कि वे कहानी को इसलिए पढ़ पाए; क्योंकि उसे वे पहले से जानते, समझते थे, उसकी घटनाओं का क्रम उन्हें मालूम था।

बाल साहित्य के बारे में मेरे निष्कर्ष सामुदायिक ज्ञान पर आधारित हैं जो मैं कक्षा में प्रस्तुत करता हूँ। ये नतीजे साक्ष्य आधारित हैं और इनमें बच्चों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया है और उन्होंने कहानी को सुना, बोला, समझा और अंत में बिग बुक से कुछ मुख्य शब्दों को देखकर लिखा भी।

बच्चों के ज्ञान की दुनिया किसी भी बाल साहित्य की आधारशिला होती है। जब तक बच्चे संस्कृति के निरूपण में अपनी रुचि और अनुभवों को नहीं देखते, तब तक शायद वे उसे ज्यादा पसंद न कर पाएँ। जब हम अध्यापन के चक्कर में अपने बचपन को भूल जाते हैं, तो उस बात को याद नहीं रख पाते कि हमारा अपना बचपन कैसा था। हम पढ़ने और लिखने के नाम पर बच्चों पर धौंस जमाने लगते हैं। शायद इसी कारण साक्षरता को वाचिकता से ज्यादा शक्तिशाली मान लिया गया है मगर वाचिकता के बिना केवल साक्षरता अकेले सार्थक नहीं हो सकती और लिखित विश्व में सामाजिक व्यवस्था का अधिकांश हिस्सा अनकहा रह जाएगा। जैसा कि ब्राजीलियन शिक्षाशास्त्री पाऊलो फ्रेरे ने कहा है, ऐसी स्थिति में चुप्पी की संस्कृति में पले बच्चे और समाज के तानाशाह के रूप में अध्यापक ही स्कूल में दिखाई दिया करेंगे। बच्चों की वाचिक परम्परा पर साक्षरता की शक्ति से लैस अध्यापक उनके अनुभव और ज्ञान को संकुचित कर देंगे और ऐसी स्थिति में किसी तरह की समानता हासिल नहीं की जा सकती। बाल केन्द्रित शिक्षा आज एक प्रचलित शब्द बन गई है मगर अध्यापकों के व्यवहार में अभी भी दिखाई नहीं देती। शिक्षक-प्रशिक्षण में शिक्षा के सिद्धांतों की बात करना और कक्षा में बच्चों को अपने समान व्यक्ति के रूप में न देखना अध्यापकों और विद्यार्थियों की असमानता को बढ़ाता रहेगा और मौखिक व लिखित के बीच एक सामाजिक फासला बना रहेगा। चुप्पी को तोड़ने और खुलेपन के लिए कक्षा में बच्चों को ज्यादा जगह मुहैया कराना जरूरी है। तभी अध्यापकों के पास बच्चों को गौर से सुनने और उनको जानने का धैर्य होगा और उद्देश्यपूर्वक सार्थक ढंग से पढ़ने का सवाल सामने आ पाएगा।

बच्चे ऐसे अध्यापकों की प्रतीक्षा कर रहे हैं जो उनको गौर से सुनें और उनकी विविध कल्पनाओं को सराहें। उनके पास हमेशा अपने अनुभवों की असंख्य कहानियाँ रहती हैं, मगर अध्यापक अपने अधिकार के बल पर उन्हें चुप करा देते हैं और इस तरह उनके वे अनकहे मानसिक और वाचिक पाठ भी खामोश हो जाते हैं जो वाचिक परम्परा में ही खुल सकते हैं!

आइए, बच्चों की असंख्य ध्वनियों को सुनें और जानें कि उनके पास कौन सा ज्ञान है जो हमारे पास नहीं है!

महेंद्र कुमार मिश्र

महेंद्र कुमार मिश्र सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम के तहत उड़ीसा, भारत के राज्य में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में बहुभाषी शिक्षा के संस्थापक हैं। प्राथमिक स्कूल के पाठ्यक्रम के लिए आदिवासी संस्कृति को लागू करने के लिए काम किया है। वे भारत के एक जाने-माने लोककथा अध्ययनकर्ता हैं और कालाहांडी के मौखिक काव्य (2007) के लेखक हैं। वे समुदाय के ज्ञान पर कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, बहुसांस्कृतिक शिक्षा और अध्यापन के साथ जुड़े रहे हैं।
सम्पर्क- mkmfolk@gmail.com

बाल साहित्य की जादुई दुनिया

— ऊषा शर्मा

इस लेख में ऊषा शर्मा बताती हैं कि बाल साहित्य की दुनिया कितने कमाल की दुनिया है। इस दुनिया में प्रवेश बच्चों को आनंद से भर देता है। बावजूद इसके बाल साहित्य हमारे स्कूलों में अपनी उपयुक्त जगह नहीं बना पाया है। उन्होंने स्कूलों में बाल साहित्य के प्रति इस उपेक्षित नजरिये के सम्भावित कारणों की पड़ताल की है और बाल साहित्य प्रकाशन के वर्तमान हालात का हवाला देते हुए अच्छे बाल साहित्य की कसौटियों व चयन की प्रक्रियाओं को सामने रखने की कोशिश की है।

बाल साहित्य की एक अपनी ही दुनिया और अपने ही रंग हैं। जिन्हें इस दुनिया में दाखिल होने और इन रंगों से सराबोर होने के अवसर मिले हैं उन्होंने इससे मिलने वाले आनंद का भरपूर आस्वादन किया हैं। बाल साहित्य अपने माध्यम से बच्चों को अपनी कल्पनाओं को एक विस्तृत आकाश देने, एक विस्तृत अनुभव संसार का दरवाजा खोलने और अपनी भाषा रचने-गढ़ने का अवसर देता है। जब किसी बच्चे के हाथ में कहानी या कविता की या कोई चित्रात्मक किताब आती है, तो वह उसके पन्ने-दर-पन्ने पलटते हुए अपने अनुभव-संसार का विस्तार करता है। संसार के बारे में अनेक अवधारणाएँ 'बनती' और 'बिगड़ती' हैं, 'नया रूप और आकार' पाती हैं। एक अनुभव संसार वह है, जो बच्चों के सामने है, प्रत्यक्ष है, जिससे रोज उनका आमना-सामना होता है- शाला के रास्ते में आने वाले पेड़, गली का कुत्ता, किसी के घर से बाहर जाती या दबे पाँव किसी घर में भीतर जाती बिल्ली, दादाजी की छड़ी, दादीजी का चश्मा, माँ की साड़ी का आंचल जिसमें अकसर छुपन-छुपाई खेलते हैं या किसी की डाँट से बचने की ओट के रूप में पाते हैं, नल से बहते पानी को ऊपर उछालना और 'बारिश' लाना, कई-कई घंटों पानी के लिए लाइन में लगना या पानी की टंकी का इंतजार करना, रोटी के गोल आकार के लिए अपने आस-पास रूपक खोजना आदि। वह सब कुछ जो बच्चों के आस-पास है, उनकी अवधरणाओं का आधार है; लेकिन जैसे ही वे बाल साहित्य की दुनिया में दाखिल होते हैं, उनके अनुभव-संसार का और अधिक विस्तार होने लगता है। उन्हें यह ज्ञात होता है कि उनके घर के पास वाला, शाला में लगा हुआ या अलग-अलग रास्तों में लगे हुए पेड़ इस किताब के पेड़ से कुछ अलग है या वैसा-सा ही है, वे अलग-अलग तरह की छड़ियों का अवलोकन करते हैं और पाते हैं कि छड़ी का इस्तेमाल सिर्फ चलने में सहारे के लिए ही नहीं होता बल्कि इससे पेड़ के आम तोड़े जा सकते हैं, दूध चट करने वाली बिल्ली भगाई जा सकती है, रोटी कितनी बड़ी और बेहद पतली भी हो सकती है, पानी सिर्फ नल में ही नहीं होता, वह तो नदी, नालों, समुद्र, नहर, तालाब, कुओं में भी होता है, कौआ सिर्फ पेड़ पर ही नहीं बैठता, वह तो गाय-भैंस की पीठ पर भी बैठता है, जब हाथी को हिचकी आती है तो क्या-क्या होता है, उसकी हिचकी

बंद कैसे होती है, आधी गोलाकृति हमारे आस-पास कहाँ-कहाँ है, आदि-आदि। बाल साहित्य की इस चामत्कारिक दुनिया का जादू बच्चों को स्वतः ही अपने सम्मोहन-पाश में बाँध लेता है।

लेकिन हमारी शिक्षा व्यवस्था में ऐसे बाल साहित्य के लिए न तो कोई स्थान नजर आता है और न ही ऐसा बाल साहित्य जो सम्मोहन का जादू जानता हो। ऐसे अनेक बच्चे हैं जो शिक्षा-व्यवस्था की 'दुर्व्यवस्था' के कारण इस जादू से अछूते हैं। जिसका सबसे बड़ा उदाहरण है -पाठ्य-पुस्तक संस्कृति! क्या कोई पाठ्य-पुस्तक बाल साहित्य जैसा जादू उत्पन्न करने में समर्थ है? क्या वह बाल साहित्य जैसा चमत्कार कर पाती है कि हाथ और नजरों से किताब छूटे ही ना! संभवतः नहीं! पाठ्य-पुस्तक की अपनी एक 'विशिष्ट और विचित्र-सी' संस्कृति जो कहीं न कहीं परीक्षा के भय को अपने भीतर समेटे हुए है या यूं कहिए कि वह स्वयं परीक्षा से भयाक्रांत है। पाठ्य-पुस्तक परीक्षा के दायरे में बँधी हुई है और एक तयशुदा दिशा में चलती है। पहले पहला पाठ 'पढ़ाया' जाएगा, फिर दूसरा, फिर तीसरा और फिर चौथा ...। पाठ-दर-पाठ 'पढ़ाने' के एक निश्चित अंतराल पर परीक्षा होगी जो उन पाठों पर ही आधरित होगी। परीक्षा के आधार पर बच्चों की प्रगति का लेखा-जोखा रखा जाएगा। तो फिर 'दूसरी' किताब यानी बालसाहित्य की कोई किताब क्यों पढ़ी जाए? लिहाजा बालसाहित्य शाला या कक्षा के बाहर ही अपनी उपस्थिति दर्ज करता है। इसका मतलब यह है कि किन्हीं नीतियों के तहत अगर बाल साहित्य खरीद भी लिया जाए, तो वह किसी अलमारी या किसी संदूक में बंद हो जाता है। प्राथमिक स्तर पर और विशेष रूप से कक्षा एक और दो के बच्चों के लिए बाल साहित्य जैसी किसी 'चीज़' को निषेध मान लिया जाता है, क्योंकि शिक्षकों एवं 'शिक्षा अधिकारियों' के मध्य यही अवधारणा व्याप्त है कि पहली-दूसरी के बच्चे पढ़ना तो जानते नहीं हैं, फिर इन्हें बाल साहित्य देने से क्या फायदा? ये भला कहाँ पढ़ पाएँगे? किताब और फाड़ देंगे। फिर पड़ जाएँगे लेने के देने! यही कारण है कि बच्चों की शिक्षा केवल पाठ्य-पुस्तक तक ही सीमित होकर रह जाती है जिसका सरोकार केवल परीक्षा से है। हम यह भूल जाते हैं कि शिक्षा परीक्षा में 'अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होना' नहीं है।

'भारतीय समाज की बाहुल्यवादी और विविध प्रकृति निश्चित रूप से यह माँग करती है कि न केवल विविध प्रकार की पाठ्य-पुस्तकें छापी जाएँ; बल्कि अन्य सामग्री भी तैयार की जाए ताकि बच्चों की रचनात्मकता, सहभागिता और रुचियों का इस तरह विकास हो सके कि उनके अधिगम में बढ़ोतरी हो। कोई एक पाठ्य-पुस्तक विविध समूह के बच्चों की विस्तृत आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकती। ...शिक्षण की सहायक सामग्री तथा अन्य पुस्तकें, खिलौने आदि स्कूल को बच्चों के लिए रुचिकर बना देते हैं। ...शिक्षकों को विभिन्न प्रकार की आधार सामग्री जुटानी चाहिए, जिनसे ऐसी सहायक सामग्री बनाई जा सके, जिसका साल दर साल इस्तेमाल हो सके।' (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005: 106, 107)। इस संदर्भ में यह आवश्यक हो जाता है कि बच्चों को पाठ्य-पुस्तक के अतिरिक्त ऐसी सामग्री उपलब्ध कराई जाए, जो उनके सीखने में मदद कर सके। पढ़ना सीखने के संदर्भ में तो यह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है और अनिवार्य भी।

शाला के शुरूआती सालों में बच्चों की पढ़कर समझने की क्षमता का विकास करने का शिक्षा-शास्त्र इस बिंदु पर बल देता है कि बच्चों को विविध प्रकार का बाल साहित्य उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इससे वे पढ़ने का आनंद भी ले सकेंगे। बाल साहित्य का अपना एक अलग कलेवर और भाषायी छटा होती है। किताब को हाथ में उठाकर पकड़ने और उसे छूने का अहसास एक अलग ही मजा देता है और खास तरह की उपलब्धि का अहसास भी कराता है। पढ़ने का यह आनंद, यह उपलब्धि न तो केवल कार्ड ही दे सकते हैं और न ही केवल चार्ट! हमारी शालाओं में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में पाठ्य-पुस्तकों को ही एकमात्र साधन मान लिया जाता है और पूरी प्रक्रिया उसी पर केंद्रित होकर रह जाती है। कई बार तो ऐसा होता है कि बच्चों के पास पढ़ने के नाम पर पाठ्य-पुस्तक के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। अनेक बार तो वह भी समय से उपलब्ध नहीं हो पाती। प्रारंभिक साक्षरता पर हुए शोध हमें बताते हैं कि कहानियों की किताबों से परिचय और उनसे जुड़ाव होना बच्चों के लिए इस रूप में लाभदायक होता है कि वे लिखित या प्रिंट, पढ़ने, अर्थ निकालने आदि के बारे में अनेक महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं का निर्माण करते हैं। ऐसे अनेक बच्चे हैं; जिन्हें घर पर इस प्रकार का लिखत समृद्ध परिवेश नहीं मिलता, तो शाला की यह और भी जिम्मेदारी हो जाती है कि वह बच्चों को इस प्रकार का समृद्ध परिवेश उपलब्ध कराए। इस दिशा में बाल साहित्य की विशेष भूमिका है।

बच्चों में स्थायी साक्षरता कौशलों के साथ-साथ आलोचनात्मक

चिंतन, कल्पनाशीलता और सृजनात्मकता का विकास करने के लिए विविध प्रकार की कहानियों की किताबों से उनका परिचय करवाया जाना बहुत महत्त्वपूर्ण है। कक्षा में 'पढ़ने का कोना' और/या विद्यालय में एक जीवंत पुस्तकालय की उपस्थिति बच्चों को विविध प्रकार की पठन सामग्री से परिचित करवाने और उन्हें सक्रिय 'पाठक' के रूप में तैयार करने में मदद मिलती है। इस दिशा में सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत शाला -पुस्तकालयों को जीवंत बनाने और पुस्तकालय में पुस्तकें/बाल साहित्य खरीदने के लिए राज्यों को अनुदान-राशि भी प्रदान की गई।

इस संदर्भ में यह सवाल भी उठता है कि अच्छा बाल साहित्य क्या होता है, उसकी क्या विशेषताएँ होती हैं, अच्छा बाल साहित्य कहाँ से प्राप्त किया जा सकता है, क्या कोई ऐसी सूची है जो यह बता सके, सुझा सके कि किस प्रकार का बाल साहित्य बच्चों को पढ़ने, पढ़ना सीखने, पढ़कर समझने और भाषायी क्षमताओं का विकास करने में मदद करेगा। एनसीईआरटी द्वारा इन सभी सवालों को सम्बोधित करने का प्रयास किया गया।

बाल साहित्य : चयन-प्रक्रिया

बच्चों को स्वतंत्र पाठक बनाने के संदर्भ में यह बिंदु भी महत्त्वपूर्ण है कि पुस्तकालयों में बाल साहित्य का चयन ध्यानपूर्वक किया जाना चाहिए। किताबें ऐसी हों जो बच्चों के विभिन्न आयु-वर्गों, विभिन्न प्रकार की पठन क्षमताओं वाले और विविध प्रकार की रुचियों वाले बच्चों के लिए उपयुक्त हों। इस संदर्भ में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने 'प्रारंभिक साक्षरता कार्यक्रम' के अंतर्गत 2007-08 से प्राथमिक कक्षाओं के लिए हिंदी, अंग्रेजी और अब उर्दू (2014-15) में बाल साहित्य की समीक्षा करने और एक प्रस्तावित सूची का निर्माण करने का कार्य प्रारम्भ किया जिससे बच्चों, शिक्षकों, अभिभावकों, विद्यालयों, राजकीय बोर्ड और शिक्षा से सरोकार रखने वाले अन्य कर्मियों के लिए अच्छा बाल साहित्य उपलब्ध हो सके। इस सूची का निर्माण दो स्तरों पर किया गया है- स्तर एक- कक्षा एक और दो के लिए है तथा स्तर दो- कक्षा तीन से पाँच के बच्चों के लिए है। बाल साहित्य के चयन के लिए जो प्रक्रिया अपनाई गई, वह इस प्रकार है -

विभिन्न प्रकाशकों से बाल साहित्य का आमंत्रण

विभिन्न प्रकाशकों से बाल साहित्य को आमंत्रित करने के लिए समाचार-पत्र सहित एनसीईआरटी की वेबसाइट पर एक विज्ञापन प्रकाशित किया गया। जिसमें देश भर के प्रकाशकों से प्राथमिक स्तर के लिए उपयोगी बाल साहित्य भेजने के लिए कहा गया। 2007-08 में विदेशी प्रकाशकों से भी पुस्तकें आमंत्रित की गई थीं। परिषद् की वेबसाइट पर दिया गया विज्ञापन विस्तृत था; जिसमें इन बिंदुओं का उल्लेख था कि किस प्रकार का बाल साहित्य अपेक्षित है। जो बाल साहित्य वे भेज रहे हैं उनके सम्बन्ध में यह स्पष्टतः उल्लेख हो कि वे किस स्तर; स्तर एक या दो के लिए हैं। दूसरी बार दिए गए विज्ञापनों में यह विशेष अनुरोध किया गया कि प्रकाशक वे किताबें न भेजें, जो वे पिछले वर्ष भेज चुके हैं। यह इसलिए था कि उन किताबों की एक बार समीक्षा हो ही चुकी है और उनकी पुनः समीक्षा करने में समय लगाना उचित नहीं था। साथ ही यह भी अनुरोध किया गया कि पाठ्य-पुस्तकों और अभ्यास पुस्तकों को सूची में शामिल न करें। इस तरह देश भर से हजारों किताबें प्राप्त हुईं और भाषा (हिंदी, अंग्रेजी और उर्दू, उनके स्तर) स्तर एक या दो, प्रकाशकों और शीर्षकों की संख्या के अनुसार किताबों की 'कोडिंग' की गई ताकि समीक्षा करने में और सूची को तैयार करने में सहूलियत हो सके।

बाल साहित्य की समीक्षा के लिए मानदंडों का निर्माण

विभिन्न विषय-विशेषज्ञों की मदद से बाल साहित्य की समीक्षा के लिए मानदंडों को सुनिश्चित किया गया। मानदंडों का निर्माण करते समय बाल साहित्य के स्वरूप, उसकी उपयोगिता और विविध सरोकारों, संवेदनाओं को ध्यान में रखा गया। गहन चर्चा और विमर्श के उपरांत समीक्षा के मानदंड तैयार किए गए। चर्चा के दौरान बिंदु भी आया कि कविताओं की एक अलग ही विद्या होती है जो गद्य से भिन्न है। इसकी अपनी कुछ विशेष अपेक्षाएँ हैं। अतः कविताओं के लिए विशेष रूप से मानदंड तैयार किए गए। इसके अतिरिक्त बाल साहित्य की विषय-वस्तु, भाषा, कथ्य, चित्र,

संवेदनाएँ या सरोकार, ले-आउट, कागज की गुणवत्ता आदि बिंदुओं को मानदंडों की सूची में विस्तार दिया गया। विषय-वस्तु के अंतर्गत इस बिंदु पर बल दिया गया कि वह बच्चों के स्तर और रुचि के अनुकूल हो, जो बच्चों के परिवेश से जुड़ाव रखती हो, जो पढ़ने के आनंद का पोषण करे, बच्चों में कल्पनाशीलता, रचनात्मकता का विकास करे, उनमें विभिन्न भाषायी कुशलताओं का विकास करे, जो क्षेत्रीय/लोक साहित्य से परिचय कराए आदि। कथ्य और भाषा के अंतर्गत यह ध्यान रखा गया कि कथा-वस्तु स्पष्ट है और पाठक उससे जुड़ाव महसूस करता है, भाषा कथ्य अनुकूल है और बोधगम्य है, कथ्य सरल है, कथ्य की प्रस्तुति रोचक है, वाक्यों की संरचना सरल और बच्चों के स्तर के अनुरूप है, शब्द बच्चों के दैनिक जीवन, परिवेश से जुड़े हैं, भाषा सहज और स्वाभाविक है, कथ्य और भाषा क्षेत्रीय, जातीय और लिंग भेद सम्बन्ध पूर्वाग्रहों से मुक्त है आदि। चित्रों के संदर्भ में इस बिंदु पर बल दिया गया कि वे स्पष्ट और आकर्षक हैं, कल्पनापरक और विविधता से परिपूर्ण हैं, विषय-वस्तु से जुड़े हुए हैं, विषय-वस्तु का संवर्धन करते हैं, समस्त प्रकार के पूर्वाग्रहों से मुक्त हैं आदि। कविताओं के लिए यह ध्यान में रखा गया कि उनमें लयात्मकता है, अंतर्वस्तु (थीम) में विविधता है और वे रोचक हैं, वे विविध अनुभवों/संवेगों को प्रदर्शित करती हैं, ध्वन्यात्मक शब्दों का बाहुल्य है आदि। अन्य पक्षों के अंगर्तत आवरण पृष्ठ, शीर्षक, कागज़ की गुणवत्ता, लेआउट, फोंट का आकार, छपाई, मूल्य आदि की सुसंगतता पर विचार किया गया।

बाल साहित्य की समीक्षा

बाल साहित्य की समीक्षा के लिए एक समिति का निर्माण किया गया। इस समिति में ऐसे विषय-विशेषज्ञ शामिल हैं जो बाल साहित्य जैसे गहन विषय पर अधिकार रखते हैं या जिन्हें बाल साहित्य की बेहतर समझ है, ऐसे शिक्षक जो बच्चों के मनोविज्ञान, उनकी रुचि-क्षेत्रों, उनकी पसंद-नापसंद या विविधरूपी पंसद का अनुभव रखते हैं, जेंडर, विशेष रूप से सक्षम बच्चों की संवेदनाओं से सरोकार रखने वाले, लेखक, चित्रांकनकर्ता, शिक्षक-प्रशिक्षक आदि। समिति में विभिन्न विषयों, जैसे- विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, गणित आदि के विशेषज्ञों को भी शामिल किया गया ताकि जानकारी-परक बाल साहित्य में विद्यमान विषयगत अवधारणाओं की भी समीक्षा हो सके। विषयगत अवधारणाओं का स्पष्ट और सही होना भी समीक्षा का एक अन्य मुख्य बिंदु है। बाल साहित्य की समीक्षा के पहले चरण में समीक्षा समिति में शामिल परिषद् के विभिन्न संकाय सदस्यों द्वारा ऐसी विभिन्न किताबों को मोटे तौर छाँटकर अलग कर दिया जाता है जो इस प्रकार की होती हैं -पाठ्य-पुस्तकें, अभ्यास पुस्तिकाएँ, व्याकरण की किताबें, ऐसी किताबें जो प्राथमिक स्तर से बहुत ही उच्च स्तर की हैं, जो सीधे-सीधे उपदेश देती हैं या 'बुरी तरह से' उपदेशात्मक हैं। समीक्षा के दूसरे और अन्य चरणों में समिति में शामिल विषय-विशेषज्ञों द्वारा मानदंडों के आधार पर बाल साहित्य के अंतर्गत प्राप्त किताबों की समीक्षा की जाती है। विषयगत अवधारणाओं की प्रामाणिकता पर चर्चा होती है। समीक्षा के दौरान यह भी निर्धारित किया जाता है कि अमुक किताब किस स्तर के लिए उपयुक्त है। ये चरण अत्यंत गहन और विमर्श के होते हैं, क्योंकि इन चरणों में बहुत बारीक अवलोकन के बाद ही अनुमोदित बाल साहित्य की सूची तैयार की जाती है।

बाल साहित्य की सूची

समीक्षा के उपरांत अनुमोदित बाल साहित्य की सूची को दो स्तरों पर विभाजित किया जाता है और उन्हें भाषावार वर्गीकृत किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक भाषा की दो सूचियाँ तैयार की जाती हैं -स्तर एक; कक्षा 1 और 2 या स्तर दो; कक्षा 3-5। बाल साहित्य की इस सूची में चयनित बाल साहित्य का शीर्षक, प्रकाशक, प्रकाशन वर्ष, मूल्य आदि का समुचित उल्लेख होता है, ताकि इस बाल साहित्य की उपलब्धता को सुनिश्चित किया जा सके, सभी इन्हें आसानी से प्राप्त कर सकें। प्रत्येक सूची के साथ एक अनुच्छेद लिखा जाता है जिसमें बाल साहित्य की समीक्षा के उद्देश्य और कक्षा में उसके इस्तेमाल, उसके लाभ आदि के बारे में लिखा जाता है ताकि अधिक से अधिक व्यक्ति इस सूची का लाभ उठा सकें। बच्चे, शिक्षक, पुस्तकालयाध्यक्ष, शिक्षा और बच्चों के साथ किसी भी प्रकार का सरोकार रखने वाले कर्मी, शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थान आदि सभी को सम्बोधित यह सूची अत्यंत सहायक है। अभिभावकों को भी विशेष रूप से स्थान दिया गया है।

बाल साहित्य की समीक्षा : कुछ खास अनुभव

बाल साहित्य की समीक्षा से जुड़े अनुभवों ने बहुत कुछ सिखाया है और चिंतन, कार्य को दिशा भी प्रदान की है। आइए, एक-एक करके इन अनुभवों को साझा करते हैं और बाल साहित्य की रोचक भरी दुनिया को समझते हैं –

- एक आम अनुभव जो समिति में शामिल लगभग हर व्यक्ति ने अनुभूत किया है कि विज्ञापन में सुझाए गए बिंदुओं को दरकिनार करते हुए बाल साहित्य के नाम पर बहुतायत में पाठ्य-पुस्तकें, अभ्यास पुस्तिकाएँ, व्याकरण सम्बन्धी किताबें, वर्णमाला सिखाने वाली बेहद नीरस किताबें प्राप्त हुईं। अनेक किताबें ऐसी भी थीं, जो किसी 'पोथी' से कम नहीं थीं; यानी बहुत मोटी किताबें जिन्हें देखकर कोई भी बता सकता है कि ये प्राथमिक स्तर के बच्चों के स्तर के अनुरूप नहीं हैं। यह अनुभव इस ओर संकेत करता है कि बाल साहित्य की अवधारणात्मक समझ 'खतरे' में है।
- 'खतरे' का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि प्राथमिक स्तर के बच्चों के लिए बाल साहित्य के विषय विभिन्न प्रकार के जानवर, पक्षी, जंगल, चाँद आदि ही हैं। इनमे भी बिल्ली, चूहा, शेर, बंदर, चिड़िया, तोता आदि ही हैं। ऐसा लगा कि बाल साहित्य की दुनिया से नए विषय समाप्त हो गए हैं। इतना ही नहीं इनके विशेषण और रिश्ते भी तयशुदा हैं, जैसे- चालाक बिल्ली, हाथी दादा, बंदर मामा, बिल्ली मौसी, चंदा मामा, शेर जंगल का राजा, मिट्ठू तोता आदि। कहना न होगा कि सृजनात्मकता का अभाव साफ-साफ नजर आने लगा है।
- कुछ प्रकाशकों से ऐसी भी किताबें प्राप्त हुईं जो क्रमिक पुस्तकमाला श्रेणी की थीं। इस तरह की किताबों को बाल साहित्य की सूची में रखने के बारे में गहन विचार-विमर्श हुआ। चयन समिति के विशेषज्ञों का मानना था कि ये किताबें एक खास उद्देश्य से लिखी जाती हैं, जो सम्भवतः फुर्सत में पढ़ी जाने वाली सामग्री से भिन्न होता है। अतः ऐसी किसी भी क्रमिक पुस्तकमाला को बाल साहित्य की चयनित सूची में शामिल करने पर विचार नहीं किया गया। इतना ही नहीं, और ये किताबें किन मानकों के आधार पर श्रेणीकृत की गई हैं, उनमें भी अस्पष्टता थी।
- बच्चे कक्षा में; किसी संदर्भ में भाषा के विविध प्रयोगों को अपने साथ लाते हैं और इस प्रकार कक्षा में विचार-विमर्श को समृद्ध बनाते हैं। भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में भाषा परिवेश का महत्त्व होता है। यदि बच्चों को समृद्ध भाषिक परिवेश उपलब्ध कराया जाए, तो वे सहजता से भाषा को अर्जित करते चलते हैं। वे एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग भी कर सकते हैं। भाषाएँ एक-दूसरे के सान्निध्य में ही फलती-फूलती हैं। यही कारण है कि कक्षा में सहज संसाधन के रूप में 'बहुभाषिकता' को उपयोग में लाया जा सकता है। लेकिन जिस तरह की द्विभाषिक किताबें हमें प्राप्त हुईं, वे पाठों को हिन्दी से अंग्रेजी सिखाने के विचारों पर आधारित लगीं। इस प्रकार के शब्दानुवाद का एक उपदेशात्मक स्वरूप होता है, जो पठन के प्रवाह को बाधित करता है। इससे भाषा की मूल संरचना भी बाधित होती है। यही बात हमें द्विभाषिक पुस्तकों में भी दिखाई दी। अतः द्विभाषिक पुस्तकों को इस चयन में शामिल नहीं किया गया। इस संदर्भ में एक बिंदु और विचारणीय है, वह यह कि क्या हम बड़े लोग कोई कहानी दो भाषाओं में एक साथ पढ़ते हैं? क्या कोई उपन्यास, लघुकथा, कथा संकलन द्विभाषिक प्रकाशित होता है? नहीं, क्योंकि साहित्य पढ़ना भाषा सीखने के प्रयासपूर्ण उद्देश्य से अलग होता है। साहित्य को पढ़ना पढ़ने-लिखने की कुशलताओं में मदद तो करता है; लेकिन उसका प्रमुख उद्देश्य पढ़ने का आनंद देना है भाषा सिखाना नहीं। तो फिर बाल साहित्य में द्विभाषिक किताबों की 'घुसपैठ' क्यों? जरा सोचिए!
- चयन समिति के समक्ष अनेक किताबें ऐसी भी आईं जो प्राथमिक स्तर के बच्चों के रुचि-क्षेत्र से न तो मेल खाती थीं और न ही उनके स्तर के अनुरूप थीं। उनकी विषय-वस्तु और अवधरणाएँ बेहद जटिल थीं। वे किसी भी दृष्टि से पढ़ने और पढ़कर उसका आनंद लेने की प्रेरणा देने वाली नहीं लगीं, जैसे- पौराणिक ग्रंथों और महाकाव्यों के छद्म संस्करण, आत्मकथाएँ, संतों की कहानियाँ, विज्ञान और गणित की जटिल अवधारणाएँ आदि।
- बाल साहित्य में मूल्यों के प्रति 'अति' आग्रह उसके आकर्षण और सरसता को कम कर देता है, जबकि हम सब यह जानते हैं कि मूल्य सिखाए नहीं जा सकते, वे ग्रहण किए जाते हैं। एक कहानी या कोई एक प्रसंग किस बच्चे के मन-मस्तिष्क पर क्या और कैसा प्रभाव छोड़ेगा, यह तो वही बता सकता है। किसी भी पाठ्यवस्तु से समान अर्थ ग्रहण किया जाए- अत्यंत कठिन है। हमारे अनुभव, हमारी समाज-आर्थिक और

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हमारे सोचने-विचारने को प्रभावित करती है। नैतिक मूल्यों के 'जबरन बोझ' से दबा बाल साहित्य भी चयन समिति के समक्ष आया। प्रत्यक्ष रूप से दिए गए उपदेश बच्चों को किताब पढ़ने के लिए प्रेरित नहीं करते। ऐसी अनेक किताबों को सूची से 'परे' करते हुए लगा कि बाल साहित्य के क्षेत्र में अभी बहुत कुछ समझना, करना शेष है।

- चित्र विषय-वस्तु को संदर्भ में समझने में मदद करते हैं। चित्रों के सहारे छपी/लिखित भाषा के बारे में अनुमान लगाने में मदद मिलती है। चित्र यदि आकर्षक, जीवंत, तर्क संगत और कल्पनाशील हों तो इससे पाठक को पढ़ने में मदद मिलती है तथा वे स्वयं ही कथ्य को सम्प्रेषित कर देते हैं। चित्र वह भी कहते हैं जो 'शब्दों में कहा नहीं गया।' कुछ बाल साहित्य केवल चित्रों के द्वारा ही रचा गया था और उन्हीं के सहारे कहानी आगे बढ़ रही थी। जबकि अनेक किताबें ऐसी थीं, जिनके चित्रों में न तो किसी तरह का आकर्षण था और न ही जीवंतता! कंप्यूटर के सहारे बनाए गए चित्रों में प्रायः जीवंतता का अभाव रहता है। यूँ कहा जा सकता है कि चित्रों के मामले में 'अपन' का अनुभव अत्यंत 'कटु' रहा।

- बाल साहित्य की 'कुछ' किताबों ने 'बहुत' समय लिया। हालाँकि एक-एक किताब को तीन-तीन विषय-विशेषज्ञों द्वारा समीक्षित किया गया था और सर्वसहमति से किताब को अनुमोदन देने या न देने का निर्णय लिया गया था; लेकिन कुछ किताबों के मामले में तो मानो 'सुई' अटक ही गई हो। बारिश का एक दिन, जूँ और टूँ, काँच का पेड़, मुकुंद और रियाज, नन्हे खरगोश की बुद्धिमानी, मेंढक का नाश्ता, भेड़िए को दुष्ट क्यों कहते हैं, बाबूजी का दबंग दस्ता, आदि। इनमें से विशेष रूप से मुकुंद और रियाज़ का ज़िक्र करना रोचक बिंदुओं को उजागर करेगा। नीना सबनानी द्वारा लिखी और चित्रित कहानी में दो दोस्तों -मुकुंद और रियाज़ के मधुर रिश्तों को दिखाया गया है। दोनों पड़ोसियों में बेहद आत्मीयता और समझदारी है। वे एक-दूसरे के त्योहारों को मिलकर मनाते हैं, एक-दूसरे के घर जाते हैं। कहानी का कथ्य अनेक संवेदनाओं को समेटे हुए है; लेकिन कहानी में 'जिन्ना टोपी, भारत पाकिस्तान के विभाजन' का जिक्र है। चयन-समिति में अलग-अलग तर्क प्रस्तुत किए गए। कुछ कथ्य, संवेदना, विशिष्ट चित्रांकन के आधार पर इस कहानी को रखने के पक्ष में थे, तो कुछ 'जिन्ना टोपी और भारत पाकिस्तान के विभाजन' के उल्लेख के कारण न रखे जाने का अपना पक्ष रख रहे थे। संवाद और गहन विमर्श के बाद यह निर्णय लिया गया कि यह कहानी उच्च स्तर के लिए अनुमोदित की जा सकती है; लेकिन प्राथमिक स्तर के बच्चों के लिए 'जिन्ना टोपी और भारत पाकिस्तान के विभाजन' के पूरे परिप्रेक्ष्य को समझना कठिन हो जाएगा। बाल साहित्य स्वतंत्र पठन को प्रोत्साहित करने के लिए है, फिर चाहे वह कक्षा हो, विद्यालय हो या घर! बाल साहित्य शिक्षक द्वारा ही पढ़ाया जाए -ऐसा भी नहीं है। अतः इस कहानी को फिलहाल यहाँ न रखा जाए। इसी तरह किताबों के कथ्य, उनकी प्रामाणिकता, उनके चित्रांकन, उनमें छिपे अप्रत्यक्ष संदेश आदि के कारण कुछ कहानियों को सूची में शामिल नहीं किया गया और कुछ को इसी बहस, चर्चा, गहन विमर्श और सटीक तर्क के बाद शामिल कर लिया गया। बाल साहित्य में अनुवाद की समस्या काफी है। अनेक बार अनुवाद इतना बोझिल और यांत्रिक होता है कि वह पढ़ने का मजा नहीं दे पाता। भाषायी संरचना में 'टूटन' साफ-साफ नजर आती है। इतना ही नहीं कुछ किताबों को कक्षा में भी इस्तेमाल करते हुए बच्चों की प्रतिक्रियाओं का गहन अवलोकन किया गया, उनकी पसंद-नापसंद के बारे में पूछा गया और जब निर्णय लिये गए, बच्चों के साथ निरंतर काम करते हुए बाल साहित्य की समझ और चयन प्रक्रिया बेहतर बनती चली गई। हम 'बड़े' जिस तरह से चीजों को देखते हैं, संभवतः बच्चे उस तरह से चीजों को नहीं देखते। उनका अपना ही अलग 'अंदाज' होता है।

- बाल साहित्य की कुछ किताबें ऐसी थीं, जिनमें किसी तरह की कोई लम्बी-चौड़ी बहस, गहन विमर्श की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। वे लगभग सभी मानदंडों पर खरी उतरते हुए चयनित सूची में शामिल हो गईं। नो डेविड नो, माला की चाँदी की पायल, बुलबुली के बाँस, मैं भी, रूपा हाथी, आम की कहानी, बिल्ली के बच्चे, थाथू और मैं, जादुई पंख, रजिया का कमाल, मेरा एक दिन, मैं क्या कर सकती हूँ, अक्कड़-बक्कड़, बुढ़िया की रोटी, मीता और उसके जादुई जूते, लौट के चूहा घर को आया, आदि ऐसा ही बाल साहित्य है।

'आम की कहानी' में भी आम के हाथ से निकल जाने से लेकर उसके हाथ में आ जाने तक की कहानी को बेहद रोचक और सुंदर अंदाज़ में प्रस्तुत किया गया है। दरअसल, जब बच्चे चित्र-कथाओं के पन्नों से एक-एक करके गुज़रते हैं तो एक

कहानी उनके मस्तिष्क में जन्म ले लेती है। पन्नों के पलटने के साथ उस 'मानसिक कहानी' का भी विकास होता चलता है। फिर भाषा हो या न हो, बच्चों को कोई फर्क नहीं पड़ता। बच्चे चित्रों के सहारे अनुमान लगाने की क्षमता का भी संवर्द्धन करते हैं। बाल साहित्य की श्रेणी में ऐसे साहित्य ने भी जगह पाई जिसमें स्थानीयता का पुट था, ताकि बच्चे उसके साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर सकें। आंचलिक शब्द बच्चों के बेहद करीबी दोस्त होते हैं और इन शब्दों के बहाने, अपनी परंपरा, संस्कृति को जानने, उससे जुड़ने और उसे आगे बढ़ाने की प्रेरणा मिलती है। इसके अतिरिक्त बाल साहित्य में खेल गीतों का भी विशेष महत्त्व है। शब्द जितने बच्चों के करीब होंगे, बच्चे भी उतना ही किताब के करीब होंगे। उदाहरण के लिए -

जा चकिया के तीन देवता,
कीला, मुठिया, यानी।
चकिया घूमे घानी-मानी
चकिया घूमे घानी-मानी (चकिया - अक्कड़-बक्कड़)
अक्कड़-बक्कड़, बम्बे बो
अस्सी नब्बे, पूरे सौ
सौ में लगा धागा,
चोर निकलकर भागा। (अक्कड़-बक्कड़)

शब्दों की आंचलिकता के अतिरिक्त बाल साहित्य का एक और मजबूत

पक्ष है। वह है- शब्दों, वाक्यांशों, वाक्यों की संदर्भगत सटीक पुनरावृत्ति शब्दों, वाक्यों की पुनरावृत्ति एक प्रकार का लयात्मक वातावरण भी पैदा करती है। भाषायी पुनरावृत्ति के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

- "मैं घूमने जा रहा हूँ", बत्तख का बच्चा बोला।
- "मैं भी चलूँगा", चूजा बोला।
- "मैं गड्ढा खोद रहा हूँ", बत्तख का बच्चा बोला।
- "मैं भी खोदूँगा", चूजा बोला। (मैं भी .....)
- शेर जाग गया/जेबरा जाग गया/चूहा जाग गया। (हाथी की हिचकी)
- उसने पानी पिया/और पिया/और पिया/और पिया (हाथी की हिचकी)

जहाँ तक सामाजिक मूल्यों का सवाल है यह बाल साहित्य सीधे-सीधे उपदेश देने की प्रवृत्ति से बचा हुआ है।

हाँ, यह अलग बात है कि मूल्य कहानी के ताने-बाने में इस तरह गुँथे हुए हों कि वे कहानी के साथ-साथ स्वयं ही, अनायास तरीके से संप्रेषित हो जाएँ। लेकिन रचनाओं का गहन विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि कोरी उपदेशात्मकता, नैतिक मूल्यों से पोषित रचनाओं को जगह देना इस बाल साहित्य का उद्देश्य नहीं है।

स्वतः प्रेषित होने वाले मूल्यों की एक बानगी इस प्रकार है- 'कितनी प्यारी है यह दुनिया' पशु-पक्षी, पेड़-पौधें के प्रति प्रेम का भाव तो प्रकट करती ही है, साथ ही छोटे-भाई-बहनों के प्रति भी स्नेह-भाव को पोषित करती है। 'हाथी की हिचकी' शीर्षक कहानी में एक-दूसरे का सहयोग, अहिंसा, शांति, परस्पर भाईचारा, मैत्री, सद्भाव जैसे मूल्य बेहद सुंदर अंदाज में प्रस्तुत किया गया है। इसी कहानी (हाथी की हिचकी) में केवल दो दृश्य ही इतने सक्षम हैं कि वे पूर्वोक्त समस्त मूल्यों को प्रदर्शित कर सकें। दोनों दृश्यों में शेर, चूहा, जेबरा, सभी मिलजुल कर एक-दूसरे का सहारा लेकर सो रहे हैं। पहले दृश्य में चूहा शेर की पूँछ ओढ़ावन बनाकर बेफिक्री से 'मुँह खोलकर' सोता है तो दूसरे दृश्य में यह बेफिक्री और भी नजर आती है जब चूहा शेर के पैरों और जेबरा शेर की पीठ का सहारा लेकर चैन से सोते हैं। इन दो चित्रों पर बातचीत की जाए तो मूल्यों की दृष्टि से यह कहानी बहुत मूल्यवान् सिद्ध हो सकती है। 'गड़बड़ परिवार ने सुलझाई परेशानी' जेंडर जैसे मुद्दों को सम्बोधित करती है; जिसमें पिता सहित घर के सभी सदस्य घर भर के कपड़े धोते हैं और मिलकर काम करते हैं। इसी तरह 'थाथू और मैं' बेहद मर्मस्पर्शी कहानी है, जिसमें दादाजी और पोती के आपसी रिश्तों की मिठास का अनुभव किया जा सकता है। दादाजी एक माँ की तरह पोती को सुलाते हैं और स्नेह करते हैं। 'जादुई पंख' कहानी में विशिष्ट किस्म का चित्रांकन बेहद आकर्षक है। कागज, पंख आदि से चित्रों को सँजोया गया है।

'कबाड़ी वाला', 'गाँव का बच्चा', 'मेरा है एक घर' अपेक्षाकृत नए विषय हैं और प्रस्तुति में भी नवीनता है। 'घुमंतुओं का डेरा' कविता संकलन में बेहतरीन कविताएँ हैं, जो बच्चों को यह अवसर देती हैं कि वे अपने अनुभवों को उनसे जुड़ा हुआ पाएँ। 'बिग बुक' के रूप

में 'खिचड़ी', 'बिल्ली के बच्चे', 'गिजिगाडू और टिमटिमाते जुगनू' काफी लोकप्रिय हैं। बाल साहित्य का यह रूपाकार कक्षा में चित्रों को दिखाते हुए कहानी सुनाने में मदद करता है। 'रूपा हाथी', 'लालू और पीलू', 'बिल्ली के बच्चे ' आदि ऐसी कुछ रचनाएँ हैं,जो बच्चों द्वारा और बड़ों द्वारा भी बेहद पसंद की गई हैं।

इस प्रकार बाल साहित्य के चयन की यह प्रक्रिया जारी है ताकि बच्चों के पढ़ने के लिए सार्थक, रोचक और उन्हीं की दुनिया के रंगों से सराबोर सामग्री उपलब्ध कराई जा सके। चयनित बाल साहित्य की सूची को एनसीईआरटी की वेबसाइट पर 'अपलोड' किया जाता है; ताकि इससे एक बड़ा वर्ग लाभान्वित हो सके। बाल साहित्य के प्रति स्पष्ट अवधारणा का निर्माण करने और यह समझ विकसित करने में कि अच्छे बाल साहित्य का चयन किस प्रकार किया जाए, इस संदर्भ में एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा एक प्रक्रिया दस्तावेज भी वेबसाइट पर अपलोड किया है, जिससे विभिन्न राज्य एवं संगठन आदि अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में भी बाल साहित्य की चयन-प्रक्रिया को सम्पन्न करते हुए बच्चों के पढ़ना सीखने में मदद कर सकें। इतना ही नहीं, उच्च प्राथमिक स्तरों पर भी बाल/किशोर साहित्य की चयन-प्रकिया के प्रति जागरूकता का विकास करना जरूरी है ताकि पुस्तकालयों को जीवंत बनाया जा सके और बच्चों को पढ़ने के लिए विविध रूपी सामग्री उपलब्ध कराई जा सके।

डॉ. ऊषा शर्मा

डॉ. ऊषा शर्मा एनसीईआरटी में प्रारंभिक साक्षरता कार्यक्रम की समन्वयक हैं। वे देश भर में बच्चों के शुरुआती पढ़ना-लिखना सीखने के बेहतर और प्रामाणिक तौर-तरीकों को कक्षायी प्रक्रियाओं का अभिन्न हिस्सा बनाने के लिए निरंतर कार्यरत हैं। वे प्रारंभिक साक्षरता से जुड़ी संसाधन, सामग्री-निर्माण और विभिन्न राज्यों में इस सम्बंध में प्रशिक्षण/कार्यशालाओं के आयोजन में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। वे कक्षा एक और दो के बच्चों के लिए एक बाल पत्रिका 'फिरकी बच्चों की' की शैक्षणिक संपादक हैं। 1992 में स्कूली अध्यापन से अपने कैरियर की शुरुआत करते हुए लगभग 10 वर्षों तक 'डाइट' (एस.सी.ई.आर.टी.) नई दिल्ली में कार्य किया और 2007 से वे एन.सी.ई.आर.टी. में भाषा शिक्षा, बाल साहित्य और प्रारंभिक साक्षरता के क्षेत्र में अपना अपूर्व योगदान दे रही हैं।
सम्पर्क- ushasharma1730@yahoo.com

बचपन के अन्तरंग साथी –सचित्र पुस्तकें

— अंजली नरोन्हा

इस लेख में अंजली ने बचपन के मायने पर बात करते हुए यह बताने की कोशिश की है कि बच्चों के संदर्भ में बाल साहित्य से हमारी अपेक्षाएँ क्या होनी चाहिए और इन अपेक्षाओं पर खरा उतर पाने के लिए एक अच्छे बालसाहित्य के मानदण्ड क्या हों? इस बात को समझाने के लिये अंजली ने कुछ पुस्तकों को उदाहरण के स्वरूप सामने रखा है और उनकी समीक्षा की है।

भूमिका

बचपन के बारे में बात किये बिना, बाल साहित्य, चित्र पुस्तकों की बात करना थोड़ा मुश्किल है। बचपन की अवधारणा ही बाल साहित्य को साहित्य से कुछ अलग करती है। भारत में बचपन का महत्त्व हमेशा रहा है, हर समाज में कुछ अलग तरह से। बहुत समय तक बच्चों को उस समाज की सामान्य गतिविधियों में शामिल किया जाता रहा है, उनकी कुछ अलग खास जगह बहुत कम उम्र तक रही है। मध्यमवर्गीय परिवारों में, अपने धर्म के अनुसार बाल्यावस्था के अलग-अलग चरण पर उत्सव मनाने का रिवाज रहा है –जन्म व नामकरण, अन्नप्राशन, पहले कदम, किशोरावस्था के आगमन पर जश्न मनाना, आदि। समाज के जिन वर्ग या जातियों में शिक्षा का प्रचलन शुरू हुआ, वहाँ शिक्षा शुरू होने पर पट्टी पूजा जैसा उत्सव भी होते रहे है। जहाँ बच्चा –खास कर लड़का– केन्द्र में होता है। परन्तु, गरीब कामगार परिवारों में इन सब के लिये फुर्सत व संसाधन कम ही होते थे – वहाँ बच्चों से अपेक्षा होती थी कि वह माँ बाप के कामों में हाथ बटाएँ, पर पूरा समुदाय बच्चे की परवरिश में भाग लेता। स्पष्ट है कि बच्चे किसी न किसी तरह केंद्र मे रहे हैं और उन पर ध्यान दिया जाता रहा है –उन से प्यार से बात करना, डाँटना (पीटना भी), समझाना, काम सिखाना, बड़ों से कैसे रिश्ता बनाना आदि। परन्तु वयस्क समाज से हटकर बच्चे की नजर और परिप्रेक्ष्य की जगह नहीं थी। उसे एक छोटा इनसान ही माना जाता रहा है यानी बड़ों का छोटा प्रतिरूप। आधुनिक समय (पिछली दो शताब्दियों) में ही बच्चे की अलग से पहचान को समाज में जगह मिलना शुरू हुआ है। बच्चे और वयस्क के सोचने-समझने के तौर तरीकों को अलग-अलग तरह से देखा जाने लगा है सिर्फ मात्रात्मक ही नही गुणात्मक रूप से भी। बच्चे और व्यस्क के बीच बात-बहस, द्वन्द और अंतर्क्रिया को बच्चे के विकास का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाने लगा है। इसी दौर में साक्षरता और शिक्षा का भी विस्तार हुआ और पठन सामग्री के द्वारा दूर दराज की जगहों व देशों के बीच विचारों का आदान-प्रदान बढ़ा। जिसकी वजह से लिखित सामग्री का महत्त्व बढ़ता गया और इसके चलते साहित्य की छपाई और विस्तार भी बढ़ता गया है।

बाल साहित्य से अपेक्षा

साहित्य से एक प्रमुख अपेक्षा यह होती है कि वह समाज में हो रही घटनाओं –राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक उपक्रमों पर पैनी नजर डाले और वैकल्पिक दृष्टि प्रदान करे। बाल साहित्य की जब भी बात होती है, उसे हमेशा वयस्क साहित्य से अलग कर के देखा जाता है। ऐसा

माना जाता रहा है कि बच्चे तो समाज में हो रही घटनाओं पर चिन्तन मनन नहीं कर सकते, विकल्प नहीं सुझा सकते -उन्हें तो दुनिया और समाज की परिपाटियों से अवगत कराना है, अच्छा वयस्क कैसे बनना है, ये सिखाना है -और इन सब के लिये बाल साहित्य को एक सशक्त माध्यम माना जाता रहा है। जो वयस्क दुनिया से उनका परिचय कराए और उनकी अपेक्षाओं पर खरा उतरने मे मदद करे।

जबकि दूसरी ओर विकसित हुई आधुनिक समझ बताती है कि बच्चे के सशक्त व्यक्तित्व विकास के लिये उसे अपने विचारों के लिए जगह मिलनी चाहिए, उन विचारों को उड़ान देने के लिए समर्थन चाहिए, रोजमर्रा जिन्दगी में वयस्कों के साथ हो रहे द्वंद्व, दुखद और सुखद अनुभवों के साथ जोड़ने और बांटने के लिए मौके चाहिए। एक बाल साहित्य इस तरह मौके अच्छी तरह मुहैया करा सकता है।

तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है, कि अब यह लगभग अविवादित है कि पढ़ना सीखने में बाल साहित्य की अहम भूमिका है। केवल अक्षर व मात्रा ज्ञान से पढ़ना नहीं सीखा जा सकता, खास तौर पर जब यदि पढ़ने का मतलब समझ कर पढ़ना ही समझा जाए। पढ़ना शुरू करने से भी पहले यदि पुस्तकों के साथ बच्चे की दोस्ती हो जाए, तो पढ़ना सीखने का पहला चरण मानों शुरू हो गया। कहानी सुनना, खास कर पढ़कर सुनाई गई कहानियाँ आदि, चित्र देखना और चित्रों को सुने हुए से जोड़ना, पुस्तक के पन्ने पलटने जैसी क्रियाएँ साक्षर संस्कृतियों में उतनी ही सहज होती हैं जितना कि गैर साक्षर समाजों में कहानी सुनाना और गपशप करना। पढ़ना सीखने से पूर्व ये संस्कार, पढ़ना सीखने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इन तीनों ही भूमिकाओं में लिखित सामग्री और चित्रों का बराबरी का महत्त्व है। लिखित सामग्री और चित्र के अलग-अलग पहलू हैं जो महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। पिछले 49 वर्षों में जन्म से लेकर 7 साल के बच्चों के लिए काफी सामग्री छपी है। कई प्रकाशक अब बच्चों, खास तौर पर शिशुओं के लिए भी पुस्तकें छाप रहे हैं। अंग्रेजी में यह बाल पुस्तकों का संसार ज्यादा व्यापक है -पर हिन्दी में भी उपलब्ध पुस्तकें बढ़ी हैं। कई नए लेखक और चित्रकार इस में शामिल हुए हैं। शिशुओं के लिए उपलब्ध पुस्तकों के इस व्यापक संसार के आधार पर अब इस के अलग-अलग पहलुओं पर विचार विमर्श किया जा सकता है। वर्तमान में उपलब्ध पुस्तकों के आधार पर इस लेख में ऐसे ही कुछ पहलुओं पर विमर्श उकसाने की कोशिश है।

हालांकि यह कहना बड़ा मुश्किल है कि एक अच्छी कहानी के क्या गुण होने चाहिये, फिर भी इन से संबन्धित कुछ पहलुओं पर बात की जा सकती है। हर उम्र के लिए विभिन्न तरह की पुस्तकें है, जिन के आधार पर विमर्श आगे बढ़ाया जा सकता है। इस लेख को शिशुओं के लिए प्रकाशित चित्र पुस्तकों पर केन्द्रित रखा है। इन पुस्तकों के चित्रों के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की है और इन्हीं पुस्तकों की लिखित सामग्री के महत्त्वपूर्ण पहलुओं की। उपरोक्त चर्चा के आधार पर कुछ चित्र पुस्तकों की खासियतों और कमजोरियों पर बातचीत की है।

शिशुओं के लिए चित्र-पुस्तकें

पढ़ना, समझना, चिन्तन और चर्चा के लिए पुस्तकों की एक अहं भूमिका है। चिन्तन करने के लिए पुस्तकों से जुड़ाव जरूरी है। जुड़ाव कैसे बनता है इसके लिए निम्न लिखित पहलू महत्त्वपूर्ण माने गए हैं।

विषय

परिचित और रोचक विषय- आम तौर से लोग यह मानते हैं कि विषय बच्चों के आसपास के होने चाहिए जिससे बच्चे परिचित हों; लेकिन यह हमेशा जरूरी नहीं होता। कई बार बच्चों को दूर की और काल्पनिक चीजें भी बहुत रोचक लगती हैं और कई बार पास की परिचित चीज भी अच्छी नहीं लगती। विषय के बारे में क्या लिखा और चित्रित किया गया है? बच्चे की अपनी कल्पना और अपने विचारों के लिए उसमें जगह है कि नहीं, इससे भी विषय खास पाठक के लिए रुचिकर बन जाता है।

पात्र

पात्र ऐसे हों जिन से बच्चे जुड़ाव महसूस करें, यह जुड़ाव उनकी भौतिक या जहनी जिन्दगी से हो सकता है। बच्चों की रुचि उनके अनुभवों और परिचय से बनती है, और उनकी अपनी फितरत के हिसाब से भी बनती है। जब किसी पुस्तक के पात्र खुद बच्चे होते हैं, तो आम तौर से शिशु पाठक उन से जुड़ पाते हैं बशर्ते उनके कारनामों में वो बचपना, वो शरारत हो जिसे वे पहचान सकें। अलग बच्चे अपनी जहनी और भावनात्मक जिन्दगी को अलग नजरिए से देख रहे होते हैं; इसलिए हर बच्चे को हर तरह का बाल पात्र पसन्द आए, यह जरूरी नहीं किसी को शरारती बच्चे पसन्द आते हैं, किसी को शान्त और किसी को दबंग।

पात्रों में जानवर हों- ये 2 वर्ष से 7 वर्ष के बच्चों के लिए काफी आकर्षक होते हैं। पर विरले ही ऐसी किताबें मिलती है खास तौर से हिन्दी बाल साहित्य में, जो कि उन जानवरों की प्राकृतिक फितरत पर आधारित हों। अधिकतर में पात्र भले ही जानवर हों, पर उनकी फितरत इनसानों की-सी दिखाई जाती है।

पात्र विवरण

छोटे बच्चों के लिए लिखी किताबों में यदि पात्र विवरण शब्दों में हो तो शिशुओं की रुचि खत्म हो जाती है। बच्चों के लिए पात्रों का परिचय उनके कारनामों से या फिर चित्रों से बेहतर हो पाता है।

कहानी -कथानक और विस्तार

कहानी की केन्द्रीय समस्या- कहानी में जब तक कोई टेढ़ी खीर नहीं हो जिसे पार लगाना हो, कोई दिलचस्प मोड़ नही, तो मजा नहीं आता। यह बात बच्चों की कहानियों के लिए भी उतनी ही जरूरी है। परन्तु अकसर बाल साहित्य के लेखक सोचते हैं कि बच्चों को कुछ ज्ञान देना या समझाना है। इनमें विषय तो बच्चों के करीब का होता है लेकिन अकसर बात में कुछ खास दम नहीं रहता। एक कहानी में कई समस्याएँ भी हो सकती हैं -एक समस्या का समाधान दूसरी समस्या को जन्म दे सकता है। जब तक कि केन्द्रीय समस्या एक ही है, छोटे बच्चे कहानी में ध्यान लगाए रख सकते हैं -जैसे बुढ़िया की रोटी में समस्या के हल की खोज एक और समस्या खड़ी होती है पर केन्द्रीय समस्या एक ही है कि बस बुढ़िया को अपनी रोटी वापस चाहिए।

भाषा का उपयोग

एक धारणा यह है कि शिशुओं की पुस्तकों में सरल छोटे-छोटे सीधे सादे वाक्य होने चाहिए। तर्क यह है कि बच्चों को मुश्किल भाषा समझ में नहीं आएगी। लेकिन पुस्तकों को एक मौके के रूप में यदि देखें तो इन के माध्यम से बच्चों को भाषा के नए उपयोग और लहजे से परिचय भी होता है -बच्चों को भाषा से खेलने में मजा भी आता है। 'उधर भालू साहब सैर को निकल तो आए थे, लेकिन पछता रहे थे। '(भालू ने खेली फुटबाल से) ऐसी भाषा से शुरू से ही परिचित होने से बच्चों की भाषा समृद्ध होती है।

चित्र

कहानी किस माहौल में गढ़ी गई है -इसे उजागर करने में चित्रों की अहम भूमिका होती है। जंगल या गाँव या शहर या घर की पृष्ठभूमि है -किस प्रकार का है? वहाँ क्या-क्या हो रहा है? कौन क्या कर रहा है? ये सब चित्र से समझ में आता है।

चित्र पुस्तकों में चित्र और लिखित सामग्री एक दूसरे के पूरक हों-जो बात शब्दों में कही जा चुकी है -उसकी अपनी कल्पना बनाने की छूट पाठक को होनी चाहिए, उसी को चित्रित करने में दोहराव होता है। चित्रों की अपनी एक भाषा होती है, शैली होती है, जिसे बच्चे चित्र पुस्तकों से पढ़ना सीखते हैं।

कुछ पुस्तकों पर गुफ्तगू

यहाँ हम बात करेंगे कुछ ऐसी किताबों की, जिनमें बच्चे ही पात्र हैं या फिर, जानवर। हम बात करेंगे पुस्तकों के चित्रों के बारे में और उनके शब्दों के बारे में, चूँकि चित्र और शब्द ही तो मायने गढ़ते हैं, सपनों का जाल बिछाते हैं या फिर समस्या खड़ी भी करते हैं और समस्याएँ सुलझाते भी हैं। हम अच्छी किताबों की बात करेंगे और कुछ जो उतनी अच्छी न भी हों पर किसी न किसी रूप में वे बच्चों की दुनिया में एक भूमिका अदा कर रही हैं।

ये हैं हमारी किताबें, हम ही तो हैं इनके पात्र। ये आज कल की पुस्तकें हैं, जिनमें बच्चे ही पात्र हैं। अपेक्षा यह है कि बच्चे पात्र होंगे तो जो बच्चे इन पुस्तकों को पढ़ेगे देखेंगे, उनका इन पुस्तकों से जुड़ाव बनेगा। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित बरखा सीरीज इसी तरह की एक पुस्तक शृंखला है। प्रत्येक कथावस्तु में दो मुख्य पात्र हैं, जिन के द्वारा कहानियाँ प्रस्तुत की गई हैं। जमाल और मदन पड़ोस में रहने वाले दोस्त हैं, रमा और रानी दो बहनें हैं, काजल और माधव भाई-बहन हैं

जीत और बबली भी दो दोस्त हैं और तोसिया और मिलि दो सहेलियाँ। इन बच्चों की कहानियाँ हमें बच्चों के खेल, खाने पीने और पकाने के अनुभव, उनके जानवरों और बड़ों से रिश्तों की दुनिया में ले जाते हैं। 3 स्तरों में विभाजित ये सीरीज खास तौर पर छोटे बच्चों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करने का प्रयास करती हैं। हर स्तर में 9 किताबें हैं। ये स्तर पढ़ने के स्तरों को ध्यान में रखकर बनाए गए हैं -पहले स्तर में एक चित्र के साथ एक छोटा वाक्य, बढ़ते-बढ़ते चौथे स्तर पर हर पन्ने पर 3 वाक्य तक जाता है, और वाक्य भी थोड़े बड़े हो जाते हैं। यह पढ़ना सीखने के स्तरों को एक ही आधार पर स्तरित करता है।

हर कहानी में दो बच्चे हैं -कहीं मिली और तोसिया, कहीं जमाल और मदन तो कहीं जीत और बबली। इन कहानियों में जेन्डर बराबरी और संवेदनशीलता काफी नजर आती है। लड़कियाँ पतंग उड़ाती हैं और साइकिल चलाती हैं, तो लड़के चाय और रोटी बनाते हैं। हर तरह के बच्चे हैं -सरदार, मुसलमान, उत्तरी पूर्व राज्य के बच्चे आदि। लेकिन मध्यम वर्गीय, निम्न मध्यम वर्गीय लगते हैं -एकदम गरीब बच्चे नहीं हैं, न आदिवासी हैं- पर उच्च वर्गीय बच्चे भी नहीं हैं। चित्र बहुत अच्छे नहीं हैं, बच्चों पर केन्द्रित इन पुस्तकों में चेहरों में गहराई नहीं बन पाई है, व्यक्तित्व नहीं उभरता। अधिकतर चित्र वही दिखा रहे हैं, जो कि लिखित में है, उनके बीच पूरकता नहीं झलकती। लेकिन हर कहानी में एक छोटी-सी समस्या या मोड़ जरूर है -जमाल रोटी बना रहा है तो गोल नहीं बनती, गिल्ली तालाब में गिर गई, चाय कड़वी हो गई, छिपकली की पूँछ कट गई आदि-आदि। यह एक ऐसी समस्या जो भारत में हर कहीं मिल सकती है। यह पुस्तकों की ताकत भी है और कमजोरी भी। हर जगह के बच्चे इन कहानियों से जुड़ सकते हैं; पर इनमें कोई बहुत खास भी नहीं उभर कर आता -खास तौर पर चित्रों में।

चूँकि आम तौर पर बच्चों की दुनिया को भारतीय बाल साहित्य में कम ही जगह मिलती है, इसलिए ये पुस्तकें बच्चों को बेहद पसन्द आ रही हैं। निश्चित तौर पर ये पुस्तकें बच्चों की पढ़ने की क्षमता पर भी अपना असर छोड़ती हैं।

प्रथम द्वारा प्रकाशित कई किताबें भी ऐसी हैं; जिनमें बच्चे केन्द्र में हैं -'घर जाना है', 'वो वाला चाहिए', 'चलो किताब खरीदने', 'हम बाज़ार गए', 'माँ जल्दी करो', आदि -ऐसी ही कुछ किताबें हैं। एक लड़की स्कूल के बाद घर जाने की जल्दी में है। भाषा सामान्य है -लड़की का नाम नहीं है क्योंकि पूरी कहानी प्रथम पुरुष में है -वह कोई भी हो सकती है। पात्रों की ठोस पहचान कहानी को और सशक्त बनाती है। चित्रों से पता चलता है -उसके हुलिये और डीलडौल से, कि वह एक मध्यमवर्गीय बच्ची है। इस पुस्तक में गुंजाईश थी कि चित्रों को सशक्त कर कहानी में जान डाली जा सकती थी- लेकिन चित्र काफी सामान्य हैं और विरोधाभासी भी -स्कूल जहाँ से कहानी शुरू होती है, गाँव का स्कूल लगता है -बस्ती के बाहर, पर बाकी कहानी का माहौल शहरी है। चित्र और लेखन में पूरकता

नहीं झलकती, दोहराव ही है। कहानी में कोई खास मोड़ भी नहीं है, बस एक विवरण है- लड़की क्यों जल्दी में है, इसका कोई आभास नहीं मिलता और अन्त में पता चलता है कि उसके माता पिता को काम पर जाना है। इस समाधान और जल्दी को दर्शाना -खास मेल नहीं खाता। प्रथम की कई कहानियाँ इसी तरह की हैं -बच्चों की ज़िन्दगी की साधारण सी घटनाएँ, सामाजीकरण का पुट-कुछ सीख छिपी हुई। 'वो वाला चाहिए' में भी एक सन्देश छिपा है। नीचे से निकालने वाली चीज नहीं माँगना दिक्कत होती है। इस सन्देश में अपने आप में समस्याएँ हैं, नीचे से निकालने की समस्या को हल करने का रास्ता दिखाने के बजाए, उस समस्या से ही मुँह मोड़ने की सीख दी जा रही है। 'माँ जल्दी करो' एक बेहतर किताब है। इस मायने में कि इसमें बच्चा माँ से बार-बार कह रहा है जल्दी करने की कि स्कूल को देर हो जाएगी, बच्चा सही है और मां देर कर रही है।

इन सब के बावजूद, ये पुस्तकें भी बच्चों को पसन्द आ रही हैं। रंगीन चित्र, आसान भाषा और बच्चों की जिन्दगी को घेरे हुए। पर यदि हमें कुछ सोचने समझने वाले बच्चे विकसित करने हैं तो ये पुस्तकें काफी कमजोर पड़ती हैं। चाहे वे बरखा सीरीज हों या प्रथम की कई सारी किताबें, एक बड़े पैमाने पर बच्चों की जिन्दगी और कहीं-कहीं बच्चों के परिप्रेक्ष्य को भी हिन्दी बाल साहित्य में जगह दी है। ये अपने आप में एक उपलब्धि है।

ऐसी ही कुछ पुस्तकें एकलव्य ने भी प्रकाशित की हैं- जैसे प्रणव नाम के एक लड़के के स्कूल शुरू करने के समय पर आधारित कुछ किताबें। इनमें भी कुछ खास मोड़ या सशक्त कथानक या चित्र नहीं। जहाँ साहित्यिक रूप से इन में सरलीकरण बहुत है, वहीं पढ़ना सीखने के हिसाब से इन सभी पुस्तकों ने काफी मदद की है। परन्तु अब और भी किताबें हैं जिसमें बच्चे और उनकी दुनिया केन्द्र में है, उनका नजरिया भी और उनकी कल्पनाएँ भी। बच्चों में विविधता है। एक ऐसी किताब है 'मैं तो बिल्ली हूँ'। रिन्चिन द्वारा लिखी इस किताब का चित्रण जीतेन्द्र ठाकुर ने किया है। एकलव्य द्वारा प्रकाशित यह किताब, पन्नी बीनने वाले बच्चों की जिन्दगी पर आधारित है। यह बात कहानी में बताई नहीं जाती, पर चित्रों और कहानी के कथन में आ जाती है। 'टिंटी ने आँखें

खोलकर पन्नी में से आसमान को निहारा' 'टिंटी चलो कचरा बीनने चलो'। चित्र भी कचरा बीनने की बस्ती का नजारा देते हैं। चित्र भी काफी अलग तरह के हैं। उनमें एक अस्पष्टता है, जो बच्चों को अपनी कल्पना के लिए जगह देती है। कहानी और बेटी के एक मौखिक काल्पनिक खेल पर आधारित है। ये कहानी यह एक साधारण कहानी नहीं है। समाज के हाशिये पर रह रहे बच्चों की मस्ती को केन्द्र में रखकर यह कहानी माँ और बेटी के बीच के सौम्य रिश्ते की ओर ध्यान खींचती है।

रूम टू रीड द्वारा प्रकाशित, इफ्फत और राशिद सीरीज की कहानियाँ बच्चों और बड़ों के बीच एक अलग ही रिश्ता दिखाती हैं। इफ्फत और राशिद नाम के दो शरारती बच्चे इन कहानियों के केन्द्र में हैं। बच्चे बड़ों को उल्लू बनाते हैं या फिर बड़ों द्वारा उल्लू बनाने की कोशिश को ताड़ जाते हैं -'गप्पी चाचा के साँप और मगरमच्छ की बड़ी-बड़ी गप हाँक रहा है और बच्चे उसे ही बेवकूफ बना देते हैं। ये कहानियाँ उन बड़ों पर भी एक कटाक्ष हैं, जो बच्चों को बेवकूफ समझते हैं, और ऐसे शरारती और तेज बच्चों के लिए समाज में स्वीकार्यता भी बनाते हैं। ये बच्चे कभी गप्पी चाचा को, कभी माँ को, तो कभी पूरे मोहल्ले को बेवकूफ बनाने में कामयाब हो जाते हैं।

रूम टू रीड की एक और कहानी है लाली को मिला बीज। हालाँकि इस कहानी के केन्द्र में भी एक बच्ची है, और चित्र भी आकर्षक हैं, इसलिए यह पुस्तक, बच्चों में लोकप्रिय पाई जाती है; पर कहानी की हैसियत से यह थोड़ी कमज़ोर पड़ जाती है। न कहानी में कोई समस्या, न कोई मोड़, जिससे उत्सुकता बढ़े। भाषा भी सपाट। कौन सा पेड़? कौन सा फल? कुछ पता नहीं चलता और इसलिए कोई रिश्ता भी नहीं बन पाता। सामान्यीकृत रूप से पेड़ों के साथ रिश्ता बना पाने के लिए बहुत सारे अलग-अलग पेड़ों से खास रिश्तों की जरूरत है। इस कमी को पूरा करने के लिए कहानी का उपयोग करते समय, बच्चों के अपने अनुभव के पेड़ों की बातचीत कराई जा सकती है, और उनके चित्र भी बनवाए जा सकते हैं। बीज बोने और पेड़ की परवरिश करने की गतिविधियों के लिए भी यह पुस्तक मौका दे सकती है। अगर पेड़ का नाम हो जाता, तो एक कदम बेहतर होता, यदि कोई घटना भी जुड़ जाती तो और बेहतर। पेड़ों की रोचक बातों के बारे में जानकारी आधारित चित्र-पुस्तकें भी बच्चों को रोचक लगती हैं; पर जानवरों की पुस्तकों से कुछ कम। सबसे बड़े, सब से छोटे पेड़, रात को खिलने वाले पेड, दूसरे पेड़ों पर परवरिश पाने वाले पेड़, कीट भक्षी आदि। हिन्दी में इस तरह की जानकारी आधारित चित्र-पुस्तकें बहुत कम हैं।

बच्चों को केन्द्र में रखने का एक और प्रयास अब जोर पकड़ रहा है -बच्चों की अपनी लिखी कहानियाँ। लगभग बच्चों की हर पत्रिका बच्चों की कृतियों को अपनी पत्रिका में जगह देती है; पर एकलव्य ने इन कृतियों के संकलन भी छापे हैं। अब इन में से कुछ कहानियों को चित्र-पुस्तकों का स्वरूप भी दिया है। साँप ने सोचा, मेरी गाए जनी और पतंग, अभी हाल ही में आई कुछ किताबें हैं। अब चलते हैं ऐसी कहानियों की ओर जिन में पात्र हैं जानवर, इस उम्र के बच्चों के दूसरे पसन्दीदा पात्र।

जानवर हैं हमारे दोस्त

छोटे बच्चों को जानवर बहुत अच्छे लगते हैं, शायद इसलिए कि वे बड़ों की तरह, डाँटते, फटकारते, पीटते नहीं। खास कर छोटे जानवरों के साथ बच्चों का गहरा रिश्ता बनता है। जानवरों को केन्द्र में रखते हुए दो तरह की कहानियाँ सामने आती हैं- एक जो जानवरों को जानवरों की तरह देखती हैं, उनकी फितरत को ध्यान में रखती हैं और दूसरी, जिन में जानवर मानवीय गुण ले लेते हैं। महागिरि एक कहानी है, जो कि कई वर्षों से बच्चों में बहुत लोकप्रिय रही है। चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित यह कहानी एक हाथी के बारे में है। महागिरि नामक इस हाथी को खम्भे गाड़ने का काम करना है। एक गड्ढे में उसे एक बिल्ली का बच्चा दिख जाता है और हाथी उस पर खम्भा नहीं गाड़ता। इसके लिए वह खूब मार भी खाता है। परन्तु आज कल जानवरों पर आधारित अधिकतर कहानियाँ मानवीय गुण लिए हुए दिखती हैं। चाहे वो एकलव्य द्वारा प्रकाशित 'भालू ने खेली फुटबाल' हो या 'चींटा', चाहे रूम टू रीड की 'मछली'। इन किताबों को बच्चे तो बहुत पसन्द करते हैं -इन के चित्र और भाषा रोचक है- परन्तु ये कई बार उस जानवर की प्रकृति के खिलाफ भी होती हैं जिस के बारे में कहानी है। चींटे आम तौर पर बड़े समूह में रहते हैं, चींटे से कहना कि वह चींटी के लिए विभिन्न काम कर के रखे ताकि कि चींटी जब घर आएगी तो उसे विभिन्न चीजें मिलेंगी, जो कि इनसानी तौर पर ठीक हो सकता है पर बच्चों को अलग-अलग जानवरों की अपनी असल फितरत से रूबरू नहीं करता। इस तरह की कहानियाँ बच्चों में इस विचार को भी बढ़ावा दे सकती हैं कि सभी जानवर भी इंसान की तरह सोचते और व्यवहार करते हैं। 'मछली' कहानी में भी यही बात नजर आती है, वास्तविकता में तो कोई मछली दूसरी को नौकरानी नहीं बनाती। हाँ, एक दूसरे को खाती जरूर हैं। 'साँप' और 'मेरी गाए जनी' और बरखा सीरीज की कहानियों में जानवरों की असल फितरत को ध्यान में रखा गया है।

अच्छा हो कि खास जानवरों की फितरत पर आधारित कहानियाँ गढ़ी जाएँ- जैसे चींटी या दीमक या मधुमक्खी झुंडों में रहते हैं और उनकी कुछ व्यवहारगत प्रकृतियाँ हैं। रानी चींटी, चींटी के गन्ध के आधार पर खाना ढूँढ़ना और दूसरों को बुलाना, इन में चींटों या मधुमक्खियों को नाम देकर कहानियाँ बनाई जा सकती हैं या फिर मछलियाँ भी झुंडों में रहती हैं अंडे देने दूर तक जाती हैं फिर बच्चे कैसे निकलते हैं, आदि बातों पर मछलियों की कहानियाँ आधारित हो सकती हैं। या फिर पेड़ पौधों की पुस्तकों की तरह जानवरों की जानकारियों के बारे में चित्र पुस्तकें बन सकती हैं। ये भी छोटे 2-3 साल के बच्चों को बहुत पसन्द आती हैं। कहानी नहीं केवल जानकारियों की चित्र पुस्तकें।

कुछ अलग तरह की किताबें

हाथी और चींटी (रूम टू रीड) वास्तव में कहानी की परम्परा से हटकर है। यहाँ हाथी और चींटी के आकार भिन्नता उनके व्यवहार के असर को कैसे प्रभावित करती है, यह इस पुस्तक का अक्स है। इस पुस्तक में लिखित और चित्रित में बढ़िया पूरकता ही नहीं बल्कि चित्र लिखे को विस्तार देते हैं 'हाथी ने फूँका -आँधी आ गई- आँधी का विवरण केवल चित्रों में ही है, शब्दों में नहीं। यह बहुत ही सुन्दर किताब है, जो कि बच्चों को एक अलग ही अनुभव देती है। थोड़ा सा पढ़ने की जरूरत है और चित्र की सहायता से सोचने को बहुत कुछ और है। राही कदम के चित्रों का कमाल इस में काफी मदद करता है।

ऐसी ही एक और किताब है एकलव्य द्वारा प्रकाशित 'बाल्टी के अन्दर समन्दर'। इसमें घर में आने वाले नल के पानी को समन्दर के पानी से जोड़ने का प्रयास है। इस के लिए लोककथा की दोहराव की शैली का उपयोग किया गया है 'ये हैं बादल, जो करते हैं बारिश ....नदी जो मिल जाती है झील में .... पाइप से चलकर, नल से टपककर भरता है। सोनू की बालटी को' इस पूरे सफर में अलग अलग पन्नों पर बहुत ही खूबसूरत और बारीकी से -दीपा बलसावर के बनाए हुए चित्र, पाठक को न केवल सुन्दर दृश्यों में डूबने का मौका देते हैं, वरन् सोचने का भी।

विदेशी किताबों के अनुवाद से बच्चों के लिए एक अलग ही दुनिया खुलती है। बात सदियों से आ रहीं अंग्रेजी पुस्तकों की नहीं, जितनी एशिया व अफ्रीका की कहानियों की है। ऐसी ही दो किताबें हैं 'बादलों के साथ एक दिन' और 'गाँव का बच्चा'। इन दोनों ही किताबों में लिखित सामग्री और चित्र एक दूसरे के पूरक हैं। गाँव का बच्चा जेन कोवेन फ्लेचर की एक अफ्रीकी कहानी है। ये पुस्तक के चित्र और बच्चों के नामों से पता चलता है। येमी और कोकू दो छोटे बच्चे हैं जो अपनी माँ के साथ आम बेचने बाजार जाते हैं। येमी बड़ी है और कोकू की देख भाल की जिम्मेदारी येमी की है। बीच में कोकू आँखों से ओझल हो जाता है और येमी उसे ढूँढ़ने निकलती है। इस बीच पूरा गाँव कोकू की देखभाल कैसे करता है, इस की कहानी चित्रों में दर्शायी गई है।

'बादलों के साथ एक दिन' हौदा हदादी की एक अद्भुत ईरानी कहानी है जिसके लेखक और चित्रकार दोनों ही हौदा हदादी हैं। अद्भुत इस मायने में कि बादलों के साथ रिश्ता बहुत ही मजेदार है। बादल माउथ आर्गन की धुन पर नाचते हैं, वे बरसना भूल जाते हैं और माँ उन्हें जैकेट में बुन देती हैं। भाषा की शैली बहुत सशक्त बिम्ब उकेरती है। 'उबलता दूध बर्तन से बाहर निकलकर किनारे से झांकने लगा। हवा ने देखा कि माँ दूध भूल गई हैं, तो उसने रसोई में आकर जोर से दूध को फूँका। दूध ठण्डा पड़कर बरतन में दुबक गया।' 'ठण्डा पड़ना और दुबकना' किस खूबी से ये सम्बन्ध उभारा है। इस तरह की भाषा से परिचय बच्चों की सोच को भी बढ़ाता है।

बात लम्बी निकल चली है। बच्चों की पुस्तकों का विषय ही कुछ ऐसा है। हजारों पुस्तकों पर कुछ कहने को जी चाहता है, पर कहीं तो विराम देना पड़ेगा। बाकी बातें और कभी।

अंजली नरोन्हा

अंजली नरोन्हा ने दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स से इकॉनोमिक्स में स्नात्तकोत्तर किया है और 1982 से एकलव्य के साथ काम कर रहीं हैं। ये आरम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी संस्थनों के लिए शिक्षाक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों के निर्माण, प्रशिक्षण, शोध एवं शैक्षिक कार्यक्रमों के मूल्यांकन में काम करती रहीं हैं। अभी हाल के दिनों में बहुभाषिक एवं पठन कार्यक्रम विकसित करने और एन.सी.टी.ई. के साथ शिक्षक-शिक्षा का पाठ्यक्रम विकसित करने में शामिल रहीं हैं। सम्पर्क- anjali_noronha99@yahoo.com

पढ़ो–सीखो, पढ़ो और दोहराओ

— मीनू थॉमस
अनुवादः योगेंद्र दत्त

दिलचस्पी और अर्थ का निर्माण, पढ़ना सीखने के सबसे अहम पहलू है। मीनू थॉमस के इस लेख में यह उजागर करने का प्रयास है कि हमारी कक्षाओं में आमतौर पर पढ़ना-लिखने सीखने-सिखाने की प्रक्रियाएँ किस तरह से पाठ को छोटे-छोटे अमूर्त व निरर्थक प्रतीकों में तोड़कर पाठ के अर्थ व उसमें दिलचस्पी दोनों को नजर अंदाज करती हैं।

एक दफे मैंने अपने एक दोस्त से पूछा कि अगर मैं 'पढ़ने के लिए सीखो और सीखने के लिए पढ़ो' (लर्न टू रीड ऐण्ड रीड टू लर्न) कहूँ तो उसके जहन में क्या आता है। उसने तपाक से कहा, 'हार्ले डेविडसन'। मुझे मोटरसाइकिलों के बारे में तो कोई इल्म नहीं है और ज्यादा संभावना यही है कि मैं उन पर पीछे बैठ कर सवारी करने में भी डर जाऊँगी। फिर भी, मैंने उसके जवाब से संतुष्ट दिखने का अभिनय करते हुए कहा, "हम्मम, दिलचस्प! मगर क्यों?" फिर भी, मैंने न चाहते हुए भी उसे ये अहसास करा ही दिया था कि मैं उसके जवाब से संतुष्ट नहीं हूँ । खैर, बाद में मुझे मालूम हुआ कि असल में वह हार्ले डेविडसन के 'सवारी के लिए जियो और जीने के लिए सवारी करो' (लिव टू राइड ऐण्ड राइड टू लिव) वाक्य के बारे में बात कर रहा था; क्योंकि अंग्रेजी में यह वाक्य भी 'पढ़ने के लिए सीखो और सीखने के लिए पढ़ो' से मिलता-जुलता था।

उसका जवाब काफी समय तक मेरे जहन में घूमता रहा। मैं बार-बार सोचती रही कि उसे हार्ले डेविडसन का खयाल यों ही कैसे आ गया होगा। खैर! क्या वाकई कोई 'यों ही' सोच सकता है? हरेक खयाल आमतौर पर हमारे किसी पिछले तजुर्बे से ही निकलता है। इस बात को देखते हुए यहाँ इसकी वजह ये रही होगी कि उसे मोटरसाइकिलों में दिलचस्पी है और उसने फौरन ही मेरे बताए वाक्य को एक ऐसी चीज से जोड़ दिया, जो उससे मिलती-जुलती मालूम पड़ती थी। इसके साथ ही उसने मेरे बताए वाक्य (पढ़ने के लिए सीखो और सीखने के लिए पढ़ो) में एक अर्थ भी जोड़ दिया था और उसे एक बिल्कुल अलग जुमले में ढाल दिया था (सवारी के लिए जियो और जीने के लिए सवारी करो), क्योंकि दोनों वाक्यों की बनावट में भारी समानता जो थी।

यहाँ मसला मेरे दोस्त के दिमाग की चीर-फाड़ करने का नहीं है। मैं उस सामान्य प्रक्रिया के बारे में सोच रही हूँ जिसके तहत एक पाठक किसी पाठ से रूबरू होता है। मैं समझना चाहती हूँ कि इससे हमारे लिए क्या सीख निकलती है।

यहाँ दो पहलू उभर कर सामने आते हैंः दिलचस्पी और अर्थ। अगर दिलचस्पी और अर्थ ही वो चीजें हैं जिनकी मदद से पाठक किसी पाठ का अर्थ बूझता है तो फिर हम स्कूलों के शैक्षिक वातावरण में चाहे-अनचाहे इन्हीं दोनों पहलुओं को बच्चों की पहुँच से बाहर रखने की इतनी जद्दोजहद में क्यों लगे रहते हैं?

जब हम पढ़ने के लिए सीखते हैं तो मान लिया जाता है कि हमें सायास पढ़ाया जाना चाहिए और पाठ को अक्षरों और ध्वनियों की छोटी-छोटी इकाइयों में बाँटकर ही पढ़ाया जा सकता है। वयस्कों के तौर पर हमारी कोशिश यही रहती है कि बच्चों को चम्मच से खिलाने की आदत सिर्फ भोजन तक ही सीमित न रहे! मगर जो बात हम नहीं महसूस कर पाते वो ये है कि इससे बच्चों को अपने आसपास की भाषा को समझने में मदद की बजाय नुकसान ज्यादा होता है। जब हम हर शब्द को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ देते हैं तो बच्चों के पास सिर्फ कुछ अमूर्त चिन्ह जाते हैं। ये चिन्ह या प्रतीक अपने आप में कोई अर्थ लिए हुए नहीं होते। लिहाजा, हम किसी पाठ के अर्थ को समझने की मस्तिष्क की क्षमता पर बोझ डाल देते हैं और इस तरह पाठ में पाठक की दिलचस्पी को खत्म कर देते हैं।

सोचने की बात यह है कि यहाँ पाठक से क्या चीज छूट जाती है? अर्थ और दिलचस्पी। मगर क्या पाठ को पढ़ने से पहले हम इन्हीं चीजों के साथ तैयार होकर नहीं आते? और फिर भी देखिए, हम क्या कर बैठते हैं!

आइए अब देखें कि जब एक पाठक किसी चीज को सीखने के लिए अर्जित किए गए पढ़ने के अपने कौशल का प्रयोग करता है तो क्या होता है? पाठक अपनी पठन क्षमता की मदद से छपी हुई सामग्री में निहित सूचना को समझने का प्रयास करता है। पुनः, स्कूल के परिवेश में सूचनाओं को ग्रहण करने की हमारी सोच एक अलग शक्ल ले लेती है। हम यह मान लेते हैं कि उसको तोड़ना, अलग-अलग खानों में रखना जरूरी है। यह प्रक्रिया हमारी याद रखने की क्षमता पर आश्रित होती है और हम उसे केवल रटंत के जरिए ग्रहण कर सकते हैं। हम अपने बच्चों से पाठ के साथ रूबरू होने के आनंद का अवसर छीन लेते हैं। लुई रोजेनब्लाट ने इस क्षेत्र में काफी काम किया है। वह हमें बताते हैं कि पाठक किसी पाठ को पढ़ते हुए कैसे अपने अनुभव, भावनाओं और सोच को भी उसमें जोड़ देता है और इस तरह पढ़ना एक पाठक और पाठ के बीच निजी अनुभव बन जाता है। मगर स्कूलों में हम बच्चे को किसी निजी अनुभव के इस्तेमाल की गुंजाइश नहीं देते। हम पाठ को सूचनाओं का एक एकसार खंड मान लेते हैं जिसको यथावत् ग्रहण किया जाएगा और याद रखने से ज्यादा उसके साथ कुछ नहीं किया जा सकता।

पुनः, यहाँ पाठक किन चीजों से वंचित रह जाता है -अर्थ और दिलचस्पी- दो ऐसे आयाम जिनकी मदद से ही पाठक किसी पाठ से रूबरू होता है।

हम किस तरह बच्चों की दिलचस्पी और अर्थ बूझने की चेष्टा को कुंद कर देते हैं, इस पर चर्चा करने के बाद ये सवाल उठाना भी जरूरी है कि अगर किसी पाठ को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ने से उसको समझने में मुश्किल पैदा हो जाती है तो बच्चों में पढ़ने और सीखने की प्रक्रिया को सुगम बनाने के लिए हमें क्या करना चाहिए।

मैं किसी पाठ को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ने के महत्त्व को नजरअंदाज नहीं कर रही हूँ। मकसद इस बात पर एक नए सिरे से नजर डालने का है कि हम किसी पाठ को किस तरह तोड़ते हैं। जब हम सार्थक शब्दों को अक्षरों और ध्वनियों में तोड़ देते हैं तो उसे अमूर्तन के एक ऐसे स्तर पर ले आते हैं, जहाँ अलग-अलग अक्षरों और ध्वनियों का कोई अर्थ नहीं रहता। इसकी बजाय हमें चाहिए कि लंबे पाठ को छोटे-छोटे मगर सार्थक टुकड़ों में बाँटें। मसलन, ऐसे वाक्यांश, जिनमें बच्चे के सामने शब्दों का एक ऐसा समूह हो जो एक निश्चित संदर्भ में उसे एक खास अर्थ मुहैया कराता हो। जब पाठक इस बात को समझ लेता है कि किसी खास संदर्भ में शब्दों के इस समूह का क्या अर्थ है तो वह अर्थ पूरे पाठ की समग्र समझदारी का हिस्सा बन जाता है। इसके अलावा, जैसे-जैसे पाठक आगे बढ़ता जाता है और शब्दों के इन समूहों का अर्थ बूझता जाता है वैसे-वैसे इस बात में पाठक की दिलचस्पी भी पैदा होने लगती है कि अब आगे क्या होगा; क्योंकि वह समझ चुका है कि पाठ में अभी तक क्या कुछ अर्थ छिपा हुआ था।

यह मकसद कुछ हद तक विराम चिन्ह के जरिए हासिल किया जा सकता है। कभी आपने सोचा है कि किसी भी भाषा में विराम चिन्ह का प्रसंग क्या होता है? अलग-अलग वाक्यों के बीच भेद करना? जी नहीं! विराम चिन्ह से हमें पाठ की पेचीदगी और भाव में सार्थक

विरामों को पहचान कर उसे समझने में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, कक्षा-7 वसंत भाग दो के एक पाठ का अंश देखें।

"खंभा थोड़ी देर बाद सुबह हो जायेगी पेड़ तब यह कहाँ जाएगी लैटरबॉक्स उसे अपने घर का पता ठिकाना ही नहीं मालूम अपनी गली का नाम तक नहीं बता सकती वह बेचारी को अपने पापा का नाम भी नहीं मालूम छोटी है अभी खम्भा तो इसका क्या होगा कहाँ जाएगी यह कौआ मैं बताऊँ सभी क्या कौआ हम सब मिलकर कुछ करें तो इसको पापा से मिलवा सकते हैं"

क्या इस अंश का अर्थ समझना मुश्किल साबित हुआ? अब जरा इसे यूँ पढ़ने की कोशिश कीजिए -

"खंभा- थोड़ी देर बाद सुबह हो जाएगी। पेड़- तब यह कहाँ जाएगी? लैटरबॉक्स- उसे अपने घर का पता-ठिकाना ही नहीं मालूम, अपनी गली का नाम तक नहीं बता सकती वह। बेचारी को अपने पापा का नाम भी नहीं मालूम। छोटी है अभी। खंभा- तो इसका क्या होगा? कहाँ जाएगी यह? कौआ- मैं बताऊँ? सभी- क्या? कौआ- हम सब मिलकर कुछ करें तो इसको पापा से मिलवा सकते हैं।"

यह अंश एन.सी.ई.आर.टी. की पुस्तक में प्रकाशित एक अध्याय -विजय तेंदुलकर द्वारा लिखित- 'पापा खो गए' से लिया गया है। यदि केवल विराम चिन्हों को हटा दिया जाए तो शब्दों के इस ढेर का कोई खास मतलब नहीं निकल पाएगा।

अगर पढ़ते समय विराम चिन्हों का पालन करने के विचार में कोई वजन दिखाई देता है, तो मेरा सुझाव है कि शिक्षक इस समझ को एक कदम और आगे बढ़ा सकते हैं -पाठ को छोटे-छोटे सार्थक वाक्यांशों में तोड़ लें। हममें से कितने ही लोग ऐसे सामुदायिक समारोहों का हिस्सा रहे होंगे जहाँ आपने भीड़ के साथ एक ही स्वर में किसी पाठ को पढ़ा हो -जैसे कोई शपथ पढ़ना या प्रार्थना करना। वहाँ आपको इस तरह की पंक्तियाँ अकसर दिखाई देंगी:

होंगे कामयाब/होंगे कामयाब/हम होंगे कामयाब एक दिन/हो हो हो मन मे है विश्वास/पूरा है विश्वास/हम होंगे कामयाब एक दिन/होगी शान्ति चारो ओर/होगी शान्ति चारो ओर होगी शान्ति चारो ओर एक दिन/हो हो हो मन में है विश्वास/पूरा है विश्वास होगी शान्ति चारो ओर एक दिन/हम चलेंगे साथ साथ /डाले हाथो में हाथ/हम चलेंगे साथ साथ एक दिन/हो हो हो मन में है विश्वास/पूरा है विश्वास हम चलेंगे साथ साथ एक दिन/नही डर किसी का आज/नहीं भय किसी का आज/नहीं डर किसी का आज के दिन/हो हो हो मन में है विश्वास/पूरा है विश्वास नही डर किसी का आज एक दिन।

आप देख रहे हैं कि यहाँ हमने क्या किया है! हम एक लंबे पाठ को छोटे-छोटे मगर सार्थक पाठ खंडों में तोड़ रहे हैं। इससे न केवल पढ़ने की रफ्तार को कम करने और बोल-बोल कर पढ़ने में मदद मिलती है, बल्कि जैसे-जैसे हम पढ़ते जाते हैं, उसका अर्थ समझने में भी मदद मिलती है। जब हम पढ़ते समय किसी चीज का अर्थ बूझते हैं तो या तो हमें उसको पढ़ने में मजा आता है या कम से कम हम उसको न पढ़ने का एक सोचा-समझा निर्णय ले सकते हैं।

तो इसका हमारे शिक्षकों के लिए क्या निहितार्थ है? जी हाँ, यहाँ फिर दो चीजें गौर करने वाली हैं। आप इशारा समझ चुके हैं! दिलचस्पी और अर्थ। किसी पाठ के चयन और उसके साथ आप क्या करना चाहते हैं, इससे बच्चों में पढ़ने की आदत विकसित करने में बहुत मदद मिलती है।

अगर पढ़ना सीखने के लिए कोई पाठ सार्थक है तो पढ़ने के लिए सीखने की प्रक्रिया आसान हो जाती है। बच्चों की कहानियाँ इस मामले में एक अच्छा साधन साबित होती हैं। हम सभी अपने लड़कपन में किस्से-कहानियों से जरूर गुजरे हैं और बहुत हद तक अभी भी यह हमारी जिंदगी का हिस्सा है जिसकी मदद से हममें से ज्यादातर लोग कहानियों के रूप में अपने जीवन अनुभवों को दोहराते और सुनाते रहते हैं। जब बच्चे खेलते हुए, बहस-मुबाहिसा करते हुए या अकेले बैठ कर सोचते हैं तो वो भी अपने अनुभवों को खूब दोहराते हैं।

सीखने के लिए पढ़ने में अध्यापक दिलचस्पी पैदा करने और अर्थ समझाने के लिए जो तरीके और गतिविधियाँ इस्तेमाल करते हैं, उनसे बच्चों में पढ़ने की दिशा तय हो जाती है। पढ़ने से पहले, पढ़ने के दौरान और पढ़ने के बाद की 'पाठ योजना' तैयार करने और कक्षा में उसका प्रयोग करने से बच्चों में उत्सुकता पैदा की

जा सकती है और उन्हें इस बात के लिए तैयार किया जा सकता है कि पढ़ते समय, पढ़ने और समझने के लिए ज्यादा इच्छुक हों। मैं कक्षा में सिर्फ पठन रणनीतियों का प्रयोग करने की बजाय एक पाठ योजना तैयार करने पर जोर दे रही हूँ; क्योंकि पाठ-योजना कक्षा में पढ़ाने के लिए एक ब्ल्यूप्रिंट बन जाती है जिससे पढ़ने के लिए सीखने और सीखने के लिए पढ़ने वाले बच्चों के श्रेष्ठ हितों की पूर्ति के लिए अलग-अलग पठन स्तर और रणनीतियों के चयन और फेर-बदल में मदद मिलती है।

पढ़ने के लिए सीखने और सीखने के लिए पढ़ने पर इस दौरान अलग से भी बहुत बातें हुई होंगी मगर यहाँ आप देख सकते हैं कि ये दोनों प्रक्रियाएँ आपस में किस कदर गुँथी हुई हैं। ये एक ही सिलसिले के हिस्से हैं जो लगातार एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। जब आप सीखने के लिए पढ़ते हैं तो आप पढ़ने के लिए और ज्यादा सीखना चाहते हैं और जब आप सीखने के लिए पढ़ते हैं तो आप पढ़ने के लिए और बेहतर सीखते हैं।

आखिर में मैं 'राइट हैंड अप टू गॉड' के लेखक एम जे क्रोआन की यह सलाह आपके लिए छोड़े जा रही हूँ:

"सिर्फ एक बात। वो एक शय जो हमें इस ग्रह के तमाम जीव-जंतुओं से ऊपर उठा देती है, वह है पढ़ने की हमारी काबिलीयत। हम जो कुछ पढ़ते हैं उससे इस ग्रह पर सारे दूसरे जीवधारियों के साथ हमारे सम्बन्ध निर्धारित हो जाते हैं।"

- एम जे कोआन

संदर्भ :

1. टेम्पल एवं अन्य, 1988, अध्याय 3, "दि चाइल्ड रीडर रेस्पॉन्ड्स टू लिट्रेचर", चिल्ड्रेन्स बुक इन चिल्ड्रेन्स हैंड्स, बोस्टन, एलिन ऐण्ड बेकन, में।

2. के. कुमार (2000), अध्याय 3, "रीडिंग", "दि चाइल्ड्स लैंग्वेज ऐण्ड दि टीचर : ए हैंडबुक", नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट में।

मीनू थॉमस

मीनू पाँच सालों से आरंभिक शिक्षा में बच्चों और शिक्षकों के साथ काम का आनंद ले रहीं हैं। उन्हें बच्चों के साथ काम करने और उनके लिए लिखने का जूनून है। उनकी पहली बाल पुस्तक 'फकरूद्दीन का फ्रिज' थी जिसे तूलिका द्वारा प्रकाशित किया गया। इन दिनों ये थर्मेक्स फाउण्डेशन में करिकुलम डिजाइन लीड फॉर लीडरशिप इंस्टीट्यूट फॉर टीचर्स के लिए काम कर रही हैं। सम्पर्क- meenut24@gmail.com

नैतिकता, बाल साहित्य और बच्चे

— प्रदीप कुमार

प्रदीप इस लेख में बताते हैं कि किस तरह एक वयस्क मन अपनी वयस्क नैतिकता को बालमन पर आरोपित करने का प्रयास करता है और जब यह प्रयास साहित्य के माध्यम से किया जाता है तो वहाँ नैतिकता साहित्य से मिलने वाले आनंद पर हावी हो जाती है। वे बताते है कि साहित्य का मकसद नैतिकता के लबादे को ढोना नहीं है, साहित्य का मकसद उसका आस्वादन करना है और इस आस्वादन से उपजी सीख आपकी समझ और व्यवहार पर असर डालती है, जो आपको दिन-प्रति-दिन ज्यादा सम्वेदनशील होने, सही-गलत की पहचान करने में सक्षम बनाती है और यही समझ हमें नैतिक व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती है।

.....तो प्रेमचंद का हामिद अगर चिमटा न खरीदता तो क्या होता? क्या 'ईदगाह' की कहानी इतनी ज्यादा बार पढ़ी जाती? प्रेमचंद ने यह कहानी वयस्कों के लिए लिखी थी और इसलिए वयस्कों की दुनिया के मूल्य बच्चों के लिए महत्त्वपूर्ण हो गए, क्योंकि हामिद ने अपने बचपन को छोड़ वयस्कों के मूल्य को वरीयता दी। हालाँकि यह कहानी ऐसे कई सवाल उठाती हैं जो सामाजिक तौर पर महत्त्वपूर्ण हैं, पर सबसे महत्त्वपूर्ण है उस छोटे से हामिद में जिम्मेदारी का बोध, दादी अमीना की चिंता, जिसे कहानी बेहद ही भावनात्मक तरीके से प्रस्तुत करती है और पाठक को महसूस करने के लिए मजबूर करती है। इस कहानी का नायक एक बच्चा जरूर है; पर मूलतः यह कहानी बच्चों के लिए नहीं लिखी गई थी। लेकिन इस कहानी को अकसर बच्चों के लिए इस्तेमाल किया जाता है और वयस्क मानसिकता के साथ कहानी में वर्णित नैतिक व्यवहार को अपनाने का आग्रह किया जाता है।

अकसर येनकेन प्रकारेण हम बच्चों को वयस्क नैतिकता के इस लबादे तले रहने व उसी चश्मे से देखने के लिए मजबूर करते हैं। यदि इस वयस्क नैतिकता के 'अनैतिक' बोझ से हम बचपन को बचा लें तो शायद ये समझाना आसान होगा कि बचपन अपने आप में नैतिकता का ही पर्याय है। नैतिकता की जरूरत कुटिलता पर नियंत्रण या उसे दूर रखने के लिए होती है, जबकी बचपन ही मानव जीवन की वह अवस्था है जो 'कुटिलता' से अनजान होती है। नैतिकता और बचपन के इस सहज सम्बन्ध की पूर्व शर्त वयस्क मानसिकता और जल्दी से जल्दी वयस्कता के लबादे को ओढ़ाने की बेचैनी से इसकी मुक्ति है। बड़ों का प्रत्यक्ष या परोक्ष; जितना ज्यादा प्रभाव होगा, बाल नैतिकता उतनी ही मिलावटी होगी।

इस तरह की कहानियों और साहित्य का आनंद वयस्क तो ले सकते हैं और वे बचपन से इस तरह की अपेक्षाएं भी रख सकते हैं; पर एक बाल मन इस तरह की कहानियों से शायद वह जुड़ाव न बना पाए। क्या यहाँ यह कहने की कोशिश की जा रही है कि बालसाहित्य और नैतिकता के बीच कोई रिश्ता नहीं होना चाहिए? नहीं, बाल साहित्य और नैतिकता के बीच निश्चित ही एक रिश्ता है और होना भी चाहिए; लेकिन सवाल यह है कि वह किस तरह की नैतिकता हो और बाल साहित्य के साथ उसका किस तरह का रिश्ता हो।

कहानियों की नैतिकता और नैतिकता की कहानी

इस लेख में ये समझने की कोशिश की गई है कि बच्चे के लिए वयस्क कैसी नैतिकता गढ़ते हैं और साहित्य के द्वारा किस-किस तरह से बच्चों पर नैतिकता का बोझ डाला जाता है, किस तरह साहित्य के द्वारा नैतिकता और बचपन के परस्पर सम्बन्ध को नियंत्रित और निर्देशित करने के लिए औजार की तरह प्रयोग करते हैं। इस क्रम में इसकी भी जरूरत है कि हम नैतिकता, विश्वास और धर्म के बारीक अंतर को समझें। इसके लिए जरुरी है कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और धार्मिक पृष्ठभूमि के तहत लिखी गई कहानियों को भी बच्चों के नैतिक विकास की प्रक्रिया में विश्लेषित किया जाए। कहानियों और नैतिकता पर बात करते हुए दो अलग अलग पहलुओं पर गौर करना होगा, कहानियाँ बच्चों के सामने किस तरीके से और कौनसी नैतिकता प्रस्तुत करती हैं और कहानियाँ बच्चों के नैतिक द्वंद्व को किस तरह से प्रस्तुत करती हैं।

आमतौर पर दो तरह का बाल साहित्य देखने को मिलता है एक तो वह जहाँ एक कहानी नैतिकता के बोझ तले अपना दम तोड़ते हुए एक या अधिक वांछनीय व्यवहार/मूल्य को स्थापित करती है कि फलाँ परिस्थिति मे फलाँ तरह का व्यवहार करना चाहिए या हमें ऐसा होना चाहिए, जिन्हें हम नैतिक कहानियों के रूप मे भी पहचानते हैं। तथा दूसरा वह जहाँ अलग से कोई मूल्य या वांछनीय व्यवहार की बात तो नहीं होती पर कहानी की संरचना या बुनावट में ही कुछ खास तरह के मूल्य बुने हुए होते हैं।

उपदेश देने वाली कहानियाँ अक्सर मूल्य या उपदेश से इतनी निर्देशित होती हैं कि कहानी पढ़कर एक सामान्य आनंद की अनुभूति का उद्देश्य इस निर्देशन में खो जाता है। साथ ही, कहानी पढ़कर उसे किसी मूल्य के साथ जोड़ने का मानसिक उपक्रम भी बच्चों के लिए आवश्यक है; लेकिन स्पष्ट उद्देश्य लिखकर कई कहानियाँ इस मानसिक जद्दोजहद से भी बच्चों को वंचित कर देती हैं।

हम सब यह जानते हैं और शिक्षाविद् भी इस बात से सहमत नहीं कि नैतिक कहानियाँ पढने या सुनने से बच्चों में नैतिकता विकसित हो जाती है। उपलब्ध शोध अध्ययन भी परम्परागत बुद्धिमत्ता की इस मान्यता को चुनौती देते हैं कि कहानियों में बुरे पात्रों को सजा मिलने की बात सुनने से बच्चों को नैतिक बनने के लिए मनाने में मदद मिलती है। कहानियों के अंतर्वस्तु (कंटेंट) से ज्यादा महत्त्वपूर्ण उन कहानियों पर बड़ों द्वारा की गई बातचीत में बच्चों को शामिल करना है। ये बातचीत कहानियों से उभरे मुद्दों की चर्चा पर आधारित हो सकती है। कहानियाँ नियंत्रित पात्रों के एक पूर्व निर्धारित आचरण को एक आदर्श की तरह प्रस्तुत करती हैं, जो नैतिकता को उसकी सीमाओं में बाँधती हैं। जबकि नैतिकता के सन्दर्भ में कान्ट का मानना है कि केवल वे आचरण नैतिक हो सकते हैं, जिनका इस्तेमाल सार्वभौम रूप से किया जा सकता है। कान्ट की यह समझ कहानियों के जरिए नैतिकता की सीख की सीमाओं को बताती है। यहाँ नैतिकता के व्यापक रूप को ही कान्ट ने इंगित किया है। यधपि इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण दैनिक जीवन में मूल्यों के द्वंद्व से प्रभावित होने वाले बच्चों के उचित और अनुचित व्यवहार और वयस्कों के लिए इन व्यवहारों की उपयुक्तता तय करना है। वयस्क यह उपयुक्तता सामाजिक संरचना में निहित बड़ों के मूल्यों को समर्थन करने वाले तत्त्वों के आधार पर करते हैं।

चूँकि प्रेमचंद के लेखन का दौर स्वाधीनता संग्राम के दौरान का है इसीलिए उनकी रचनाओं खासकर बच्चों के लिए लिखी कहानियों में नैतिकता और साहस पर काफी बल दिया गया है। प्रेमचंद्र की बच्चों के प्रति सोच 1930 के 'हंस' पत्रिका के संपादकीय 'बच्चों को स्वाधीन बनाओ' में झलकती है उनके अनुसार 'बालक को प्रधानतः ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वह जीवन में अपनी रक्षा आप कर सके। बालकों में इतना विवेक होना चाहिए कि वे हर एक काम के गुण-दोष को भीतर से देखें।'

चुनिन्दा नैतिकता- कहानियों की उपलब्धता का सवाल

बच्चों से संबंधित सबसे अधिक प्रकाशन कहानी के रूप में मौजूद रहे हैं और कहानी के माध्यम से नैतिक शिक्षा देना भारत की मौखिक परम्परा के मूल में रही है। ऐतिहासिक रूप से कहानियाँ

वयस्कों के लिए एक ऐसे पेडागोजी के तौर पर हमेशा मौजूद रही हैं; जिसके जरिए वे बच्चों और युवाओं तक पहुँचते रहे हैं और ये कहानियाँ अलग अलग सांस्कृतिक दायरों में एक समान लोकप्रिय रही हैं। भारतीय सन्दर्भ में प्रमुख कहानियाँ पंचतंत्र, जातक कथाएं, धर्मग्रंथों पर आधारित कथाएं और महापुरुषों के बचपन से सम्बंधित घटनाएँ शामिल हैं। इनके अतिरिक्त ग्रामीण अंचल में एक बड़ा स्त्रोत ऐसी परंपरागत लोककथाएँ होती हैं जो आस-पास की घटनाओं और चरित्रों पर आधारित होती हैं। हालाँकि यहाँ एक स्पष्ट फर्क शहरों में उपलब्ध लिखित बाल कहानियों और गाँवों में प्रचलित मौखिक कहानियों में है। शहरी कहानियों में जितना जोर सीख और नैतिकता पर है, गाँवों में उतना ही जोर सिर्फ कहानियों का मजा लेने में है, ये बच्चों पर है कि वे कहानियों से क्या सीख लेना चाहते हैं या कोई सीख लेना भी चाहते हैं या नहीं।

यहाँ हमें दो चीजों में फर्क करना होगा। बच्चों के लिए लिखी गई कहानियाँ और बच्चों पर लिखी गई कहानियाँ। गौर करें तो पाते हैं कि दोनों तरह की कहानियों में स्थापित किए जाने वाले मूल्य एक ही तरह के होते हैं, जो कि रूढ़ सामाजिक प्रचलन की उपज लगते हैं। ये कहानियाँ बच्चों के समक्ष न सिर्फ स्थापित आदर्शों को प्रस्तुत करती हैं बल्कि उनको चली आ रही 'परंपराओं' के तहत स्थापित भूमिकाओं के लिए भी तैयार करती हैं। जैसा कि 1980 और 90 के दशक में 'नंदन' की कहानियाँ लड़कियों के लिए एक ऐसे परी जगत् का माहौल रचती थीं; जहाँ उन्हें एक राजकुमार मिलता था और राजकुमार का मिल जाना उनके जीवन की सबसे बड़ी घटना होती थी। इसके साथ ही एक और मसला है, बच्चों को केन्द्र में रख कर लिखी गई कहानियों की उपलब्धता। ऐसी कहानियों के लेखक गुमनाम होते हैं, और वे ज्यादातर पत्रिकाओं के लिए लिखते हैं। बच्चों के लिए कथा-संग्रह का आना अपवाद न भी हो तो एक घटना जरूर होती है। नतीजतन वयस्कों के लिए लिखी गई कहानियों के संक्षिप्त रूप को ही बाल कहानियों के रूप में दिया जाता है। और यह प्रचलन एक बार फिर से वयस्क मूल्यों को बच्चों की दुनिया में एक मानक की तरह स्थापित करता है।

साहित्य की उपलब्धता एक बात है और परिवार में पढ़ने लिखने का माहौल होना एक बिलकुल भिन्न स्थिति है। ऐसा माना जाता है कि परिवार ही बच्चों के मन में उचित व्यवहार करने, निर्णय लेने और बड़ों के आदेशों का पालन करने की सीख देता है। परिवार में पढ़ा जाने वाला साहित्य बच्चे की सोच और भूमिका को काफी हद तक प्रभावित करता है। एक ऐसी स्थिति में जब पढ़ने की एकमात्र वस्तु दैनिक अखबार ही हो तब सामान्य साहित्य का परिवार में प्रवेश ही अपने आप में बड़ी चिंता है। बाल साहित्य के लिए तो अभी भी सबसे बड़ी चुनौती मानसिक दहलीज को लाँघना है, घर के साहित्य में अपनी जगह बनाना दूसरी श्रेणी की समस्याएँ हैं।

बच्चों के लिए प्रकाशित कहानियों में अधिकतर के मूल धार्मिक ग्रन्थों में मिलते हैं जैसे- सांस्कृतिक विरासत के रूप में दो प्राचीन महाकाव्यों -महाभारत और रामायण- पर आधारित कई ऐसी कहानियाँ हैं, जो बाल साहित्य के रूप में लगातार प्रकाशित होती रही हैं, या सावित्री और सत्यवान की कहानी या बाइबिल पर आधारित कहानियाँ ये कहानियाँ तर्क की बजाय आस्था और विश्वास को महत्त्व देती हैं। यह बच्चों को तर्क करने से रोकती हैं और नैतिकता की रूढ़ समझ को परोसती हैं। ऐसी स्थिति में बच्चे नैतिक मूल्यों को एक सार्वभौम नियम की तरह स्वीकार करने लगते हैं जहाँ स्थापित वंचनाओं को चुनौती देने की कोई गुंजाईश नहीं रहती है। वे पराभौतिक शक्तियों के डर को नैतिक नियमों के पालन का आधार मानने लगते हैं।

ए.एस. नील अपनी पुस्तक समरहिल में बताते हैं कि "किसी बच्चे पर धार्मिक रहस्यवाद नहीं लादना चाहिए; क्योंकि रहस्यवाद उन्हें सच्चाई व वास्तविकता से बचना सिखाता है, एक खतरनाक रूप में, हालाँकि सबको यदा-कदा सच्चाई से दूर भागने की जरूरत पड़ती है"। अन्यथा हम कभी कोई उपन्यास नहीं पढ़ते, कोई फिल्म नहीं देखते, कभी कभी कोई 'वर्जित' काम न करते। पर हमारा भागना, खुली आँखें के साथ होता है, और हम जल्दी ही वास्तविक दुनिया में लौट आते हैं, पर एक रहस्यवादी हमेशा अपनी आध्यात्मिकता और धार्मिकता में अपनी कामेच्छा को डालकर एक भगोड़े का जीवन जीता है।'' वे मानते हैं कि कोई भी बच्चा स्वभाव से रहस्यवादी नहीं होता।

कहानियाँ और बच्चों के द्वन्द्व

ऐसा दावा किया जाता है कि ये कहानियाँ बच्चों के पठन कौशल को बढ़ाती हैं, लेकिन ऐसी हर कहानी नैतिकता के एक महा-आख्यान पर आकर समाप्त होती है। इसका परिणाम यह होता है कि कहानी के किसी अन्य उद्देश्य से ज्यादा नैतिकता का पाठ महत्त्वपूर्ण हो जाता है। ऐसी उम्मीद की जाती है कि बच्चे इस सीख का इस्तेमाल बड़े होकर करेंगे, नतीजा कहानी बच्चों की संज्ञानात्मक जरूरत न होकर भविष्य की तैयारी हो जाती है जैसा की कृष्ण कुमार कहते हैं "बचपन जीवन का हिस्सा न रहकर एक चरण बन गया है जिसमें रहते हुए जीने की तैयारी ही की जा सकती है

जीवन जिया नहीं जा सकता"। गौरतलब है कि इस द्वन्द को कई कहानियाँ ही उभार कर सामने लाती हैं। जैसा कि फणीश्वर नाथ रेणु की लिखी एक कहानी 'आजाद परिन्दे' में एक बच्चा (पात्र) यह कहता है 'जब तक मूँछ नहीं जमेगी' .....शायद तब तक हमारी स्वीकृति तय नहीं है और हम अनैतिक कहलाते रहेंगें।

कहानियों का इस्तेमाल और इनमें छुपी चेतना दोनों दो चीजें हैं, सवाल ये है कि हम कौनसी कहानी का क्या इस्तेमाल करते हैं।

शिक्षा से यह अपेक्षा होती है कि वह बच्चों को नैतिकता की समझ विकसित करने में योगदान दे -हालाँकि बच्चों की ऐसी अपेक्षा शिक्षा से कम ही होती है- न कि रट कर रूढ़िवादिता को ओढ़ना। रूस के अग्रणी साहित्यकार एवं शिक्षाशात्री लेव टॉलस्टॉय बच्चों को समझने में हमारी विस्तार से मदद करते हैं। अपने शिक्षा सम्बन्धी विचारों में उन्होंने स्पष्ट किया है कि यांत्रिक सीखना और रटने का काम बच्चों की बौद्धिक क्षमताओं में भयावह खोखलापन और नैतिक चरित्र में विकृतियाँ पैदा करता है। उनके अनुसार बच्चे विवेकयुक्त चिंतनशील प्राणी हैं। छोटा बच्चा प्रकृति से दोषहीन और झूठे पालन द्वारा अभी भ्रष्ट न हुई रचना होता है। शिक्षकों व परिवार के सदस्यों को बच्चों की वैयक्तिकता का आदर करने और उनके स्वतन्त्र विकास में बाधा न डालने की जरूरत है।

इस तरह की नैतिकता बच्चों में परिवर्तन ला दे यह आवश्यक नहीं है तथापि यह कुछ हद तक अच्छे बुरे की अवधारणा बच्चों को बता देता है। कहानियाँ इस अवधारणा का मूर्तिकरण करतीं हैं। जैसे अकबर बीरबल, तेनालीराम, जातक कथाएं इत्यादि प्रकाशकों दवारा बहुतायत में छापी जाती हैं पर क्या स्कूल इन पर संवाद की किसी गुंजाईश का अवसर देता है। तर्क करना जरूरी है; क्योंकि तर्क मुक्त शिक्षा बच्चों में मूल्यों की घोषणाओं के जरिए भय और दोष की भावना विकसित करती है।

इस संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण बिंदु बच्चों की भागीदारी और रायशुमारी का है। इसे नाममात्र के लिए किया जाए जैसा कि प्रचलन है या अर्थपूर्ण तरीके से निभाया जाए जिससे बच्चों को सम्मान के साथ उनसे संबंधित बातों में भागीदार बनाया जाए। बच्चों की आदर्श भागीदारी उनका स्वतन्त्र काम करना नहीं है बल्कि बड़ों और बच्चों का साथ-साथ काम करना है। इस प्रकार की भागीदारी को सुनिश्चित करके बच्चों को नैतिक बनने की और प्रोत्साहित करने वाला साहित्य अभी कम है। बच्चों द्वारा रचित साहित्य तो अभी दिवास्वप्न है। कल्पनाओं की दुनिया से निकल कर बच्चों के लिए सार्थक कहानियाँ लिखना एक तकनीकी और गम्भीर काम है जैसा की ए एस नील अपनी पुस्तक समरहिल में बताते है - "बच्चे व्यावहारिक होते हैं उन्हें सिद्धांत बेहद उबाते हैं उन्हें ठोस चीजें पसन्द आती हैं, अमूर्त नहीं"। दुनिया की तीसरी सबसे ज्यादा अनुदित पुस्तक 'नन्हा राजकुमार' भी जीवन और मानव प्रकृति पर चर्चा करते हुए बच्चों और बड़ों की प्राथमिकताओं, और समझ संबंधी अंतर और इसके कारणों की बारीक पड़ताल करती है। औसतन हर पाठ के अंत में बड़ों और बच्चों के दरम्यान विस्तार से फैली हुई संवादहीनता और खासकर बड़ों में इस संवाद को कायम न रख पाने की क्षमता के अभाव का जिक्र होता है। बेहतर बाल साहित्य के अभाव में, यह संवादहीन विस्तृत दायरा न केवल बढ़ रहा हैं बल्कि जटिल भी होता जा रहा है।

यद्यपि विश्व के कुछेक देशों में बच्चों के लिए विविधता पूर्ण साहित्य की माँग ने जोर पकड़ा है और गिनती भर लेखकों ने बच्चों के लिए लिखना भी शुरू किया है तो भी बाल साहित्य लिखना अनेक साहित्यकारों के लिए प्राथमिकता और सम्मान के अभाव का क्षेत्र है, आर्थिक चुनौतियाँ तो इसमें शामिल ही हैं। वयस्कों द्वारा तय की गई प्राथमिकताओं के बीच बच्चों से संवाद की गुंजाइश पैदा करने और फैलाने वाला बाल साहित्य एक ऐसी अटल अनिवार्यता है जो काफी हद तक बचपन और नैतिकता का यह फासला पाट सकता है।

प्रदीप कुमार

प्रदीप, 2001 में दिल्ली विश्वविद्यालय से शिक्षा में एम.फिल. करने के उपरांत, पिछले 17 सालों से दिल्ली समेत भारत के करीब 13 राज्यों में शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों से जुड़े रहे हैं। पढ़ने का शौक काफी पहले से है, लिखने की फिलहाल शुरुआत है। शिक्षा के साथ आपदा राहत, बाल संरक्षण जैसे क्षेत्रों में काम करना पसंद है। फिलहाल रूम टू रीड में राज्य प्रबंधक के पद पर दिल्ली में कार्यरत हैं। सम्पर्क- Pradeep.Kumar@roomtoread.org

बाल पुस्तकें : महत्त्व, चुनाव और उपयोग

— कमलेश चन्द्र जोशी

जब बच्चे इस तरह के परिवेश व सामाजिक पृष्ठभूमि से आते हैं, जहाँ न तो पढ़ने की सामग्री उपलब्ध होती है और न पढ़ने की संस्कृति तो फिर जरूरी हो जाता है कि पढ़ना सीखने के लिए बच्चों के बीच सावधानी से चुनी हुई लिखित सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो। कमलेश जोशी ने इस लेख में इसी बात को रेखांकित करते हुए लिखित सामग्री के चुनाव व उसके उपयोग के तरीकों पर कुछ पुस्तकों की बानगी देते हुए अपने अनुभव साझा किए हैं।

बच्चों में साक्षरता से जुड़े कौशलों के विकास के संदर्भ को ध्यान में रखते हुए कक्षा में भाषायी समृद्ध माहौल व बाल साहित्य के उपयोग की चर्चाएँ अकसर होती रहती हैं। इन पुस्तकों को बच्चों के पढ़ने के कौशलों के विकास के साथ उनके संज्ञानात्मक विकास में भी महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है। कक्षा में इनके उपयोग से जहाँ बच्चे एक सार्थक संदर्भ में पढ़ना सीखते हैं। वहीं इन पुस्तकों के साथ जुड़ने से उनकी सोच, कल्पना व तर्क आदि का दायरा भी बढ़ता है। इस आलेख में इस बात की चर्चा की जाएगी कि हम प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों की किताबों का उपयोग कैसे करें।

सर्वप्रथम बच्चों की किताबों के उपयोग के बारे में चर्चा करने से पहले हम अपने प्राथमिक स्कूलों के मौजूदा परिदृश्य को समझने का प्रयास करते हैं। हमारे स्कूलों में अधिकतर बच्चे गरीब परिवारों से तथा विविध भाषायी पृष्ठभूमि से आते हैं। वे स्कूलों में पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी हैं, जिनके घर-परिवेश में न तो पढ़ने और न ही उससे जुड़ी सामग्री का माहौल है। इसके साथ हम यह भी जानते हैं कि अधिकतर प्राथमिक कक्षाओं के बच्चे पाँचवी कक्षा उत्तीर्ण करने के उपरांत भी पढ़ने का स्वस्थ कौशल हासिल नहीं कर पाते। इसकी कई वजह हैं उनमें से एक यह है कि इस पृष्ठभूमि से आये बच्चों के पास उपयुक्त पठन-सामग्री न होना, जबकि पढ़ना सीखने के लिए जरूरी है कि पुस्तकों के साथ खूब अंतःक्रिया करें, उनसे रूबरू हों, उन्हें उपट-पलटकर देखें। ऐसे में प्राथमिक कक्षाओं में बाल पुस्तकों का होना व उनका उपयोग करना बेहद जरूरी हो जाता है। ताकि बच्चे सफल व स्वतंत्र पाठक बनने की दिशा में आगे बढ़ सकें। एक सफल पाठक होने में पढ़कर समझना, समालोचनात्मक नजरिए से पढ़ना, पढ़ने का आनंद लेना, स्वतंत्र पाठक के रूप में विकसित होना आदि बातें महत्त्वपूर्ण हैं। इन बातों को ध्यान में रखकर बाल पुस्तकों के उपयोग की योजना बनाई जानी चाहिए तथा इन बातों की समझ शिक्षकों में भी होनी चाहिए।

बच्चों को पढ़ना सीखने की दृष्टि से बाल पुस्तकों का उपयोग बच्चों की पूर्व प्राथमिक कक्षाओं से किया जा सकता है परंतु बालवाड़ियों में ऐसा एक्सपोजर बच्चों को नहीं मिलता। देश में बच्चों की औपचारिक स्कूली शिक्षा कक्षा एक से ही शुरू होती है। इसके पूर्व बच्चों

को उनके घर में भी छपी पुस्तकों का कोई माहौल नहीं मिल पाता, जो आगे उनके पढ़ना सीखने में मदद कर सकता है। इस कारण कक्षा एक से तो बच्चों को चित्रात्मक पुस्तकों और अच्छी कविता-कहानी के पोस्टरों का माहौल देना ही चाहिए। लेकिन वे कौन-सी पुस्तकें होंगी उनके चुनाव में सावधानी बरतना जरूरी है। हम जानते हैं कि पढ़ना-लिखना सीखने में लिखित सामग्री के साथ अंतःक्रिया पढ़ने के कौशलों के विकास में महती भूमिका निभाती है, लेकिन शर्त यह है कि वह लिखित सामग्री उपयुक्त हो। यदि वह उपयुक्त नहीं है, तो उसका असर विपरीत भी हो सकता है और संभव है वह पुस्तक बच्चों के मन में पढ़ने के प्रति ललक व उत्साह पैदा करने की बजाए हमेशा के लिए खत्म कर दे; क्योंकि उस पुस्तक की अनुपयुक्तता उसके मन में कोई अर्थ निर्माण नहीं होने देती और अर्थहीन कवायद करने में बच्चे की कोई दिलचस्पी नहीं होती। यदि बच्चे बार-बार ऐसी अनुपयुक्त पुस्तकों से टकराएँ, तो हो सकता है कि वे समझ बैठें कि यह हमारे बस की बात नहीं और उनसे वे हमेशा के लिए दूरी बना लें।

अच्छे बाल साहित्य के चुनाव से पहले यह भी देखना होगा कि बाल साहित्य का चुनाव किस तरह के उपयोग के लिए कर रहे हैं। क्या यह वह सामग्री है, जिसे बच्चे को खुद पढ़ना है या वह सामग्री, जिसे बच्चे खुद तो नहीं पढ़ेंगे, बल्कि कोई और उन्हें पढ़कर सुनाएगा। जिस सामग्री को बच्चे खुद उपयोग में लेंगे या खुद पढ़ेंगे, उसके लिए दो तरह की सामग्री देखनी होगी। एक तो उन बच्चों के लिए, जो अभी पढ़ने की आरम्भिक अवस्था में हैं तथा दूसरे वे जो काफी हद तक खुद से पढ़ पाते हैं। यानी सामग्री का चुनाव बच्चों के पठन स्तर के अनुरूप हो। आगे हम चर्चा करेंगे कि इन स्तरों के अनुसार सामग्री का उपयोग हम अलग-अलग बच्चों के लिए कैसे करेंगे?

पहली व दूसरी कक्षाओं में बच्चों को मौखिक रूप से कविता-कहानी सुनाने, उनसे बात करने के साथ पुस्तकों को पढ़कर सुनाना महत्त्वपूर्ण गतिविधियाँ हैं। इसके अंतर्गत बच्चों को पुस्तकें दिखाना, उन्हें पुस्तकों को उलटने-पलटने का मौका देना, किताबों के चित्रों पर बातचीत करना, किताब की कहानी पढ़कर सुनाना, कहानी के आधार पर चित्र बनवाना, किताबों की कविताएँ गाना, आदि गतिविधियाँ बच्चों के साथ की जा सकती हैं। चूंकि हमारे स्कूलों में आने वाले अधिकतर बच्चे पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी हैं और वे हाशियाकृत परिवारों से ही आते हैं। इस कारण उनमें इन गतिविधियों के माध्यम से छपी सामग्री के प्रति ललक, उत्साह व भरोसे को बढ़ाना जरूरी

है। इन गतिविधियों के माध्यम से बच्चे पढ़ना सीखने के आरंभिक व अनिवार्य कौशलों को आसानी से हासिल कर सकते हैं, जैसे कि जो कहानियाँ-कविताएँ हम सुनते हैं उन्हें लिखा भी जा है, किताब कहाँ से शुरू हो रही है हिन्दी में पढ़ना बाएँ से दाएँ और ऊपर से नीचे की ओर होता है, पढ़ने के दौरान चित्रों व लिखे हुए का संबंध होता है आदि। सबसे महत्त्वपूर्ण बात बच्चों को पढ़कर सुनाने की गतिविधि में बच्चे चित्रों को देखने में बहुत गहराई से जुड़ते हैं। सब में आगे आकर चित्रों को देखने की होड़ रहती है कि वे बातचीत के दौरान चित्रों की बारीकियों को देख सकें। ऐसा 'बिल्ली के बच्चे', 'हाथी की हिचकी' 'मिठाई' व 'मैं भी' नामक किताबों को बच्चों को सुनाते हुए आसानी से महसूस किया जा सकता है।

एक शिक्षक को बच्चों के साथ किताबों पर इस तरह से बात करनी चाहिए कि जिससे उनकी समझ को व्यक्त होने का मौका मिले। इसके लिए यह जरूरी है कि उन्हें कहानी में अपने अनुभवों से जोड़ने का मौका दिया जाए, जिससे उनकी समझ विकसित हो। उदाहरण के लिए कक्षा तीन का त्रिकांत अभी पढ़ना सीख रहा है। एक दिन कक्षा में बरखा सीरीज की किताब 'छुपन-छुपाई' पर बात हुई कि तुम भी यह खेल खेलते हो, तो उसने कहा कि छुट्टी के बाद रोज ही खेलते हैं। फिर उसने यह भी बताया कि एक बार खेलने के दौरान वह अपने मकान की छत पर छुप गया और उसे कोई नहीं ढूँढ़ पाया। आगे उसने यह बात भी जोड़ी कि इस किताब में बारी आने की बात कही गई है। इसे हम यहाँ खेल में चोर बनना कहते हैं। इसी तरह किताब में धप्पा कहा गया है। इसे हम टीप कहते हैं।

बच्चों के पढ़ने की समझ पर गौर करते हुए इस बात का एहसास हुआ कि बच्चे अपने-अपने ढंग से सोचते हैं। बरखा सीरीज की ही किताब 'मुनमुन और मुन्नू' किताब को पढ़ते हुए जब उनसे पूछा गया कि बिल्ली को दूध क्यों दिया गया? तब त्रिकांत ने कहा कि अंडों को बिल्ली से बचाने के लिए उसे दूध दिया गया, जबकि रोशनी ने कहा कि बिल्ली को भूख लगी थी। यदि उसे दूध नहीं दिया गया तो वह अंडों पर झपट पड़ती। यहाँ यह बात स्पष्ट हुई कि दोनों एक ही बात कह रहे हैं लेकिन अलग-अलग तरह से कह रहे हैं।

एक स्कूल में जब कक्षा 2 के बच्चों से 'हाथी की हिचकी' पर बात करते हुए जब बच्चों से किताब के अंत में पूछा गया कि अब हाथी की छींक कैसे ठीक होगी? तब बच्चे अपने घर के अनुभवों के आधार पर बताते हैं कि हाथी को गर्म पानी की भाप करानी पड़ेगी। जब उनसे पूछा गया कि उसके लिए तो बहुत पानी गर्म करना पड़ेगा? तब उन्होंने बताया कि बड़े पतीले में गर्म करना पड़ेगा, जिसमें शादी में खाना बनता है। दूसरे बच्चे ने कहा कि उसके माथे पर गर्म पट्टी रखनी पड़ेगी। आगे और बच्चों ने कहा उसे दवाई पिलानी पड़ेगी। इन बातों से पता चलता है कि बच्चे इन किताबों को पढ़ते हुए अपने पूर्व अनुभवों का इस्तेमाल करते हैं। यह उनके समझकर पढ़ना सीखने के लिए बहुत जरूरी है। इसी तरह जब बच्चे 'मैं भी' किताब पढ़ते हुए अपने आप जान जाते हैं कि मुर्गी के पैर अलग तरह के होते हैं और बत्तख के अलग तरह के। तभी मुर्गी के बच्चे ने अंत में कहा कि अब मैं तैरने नहीं जाऊँगा। जबकि किताब में यह नहीं दिया गया है। 'बिल्ली के बच्चे' किताब पढ़ते हुए भी बच्चों को बहुत आनंद आता है। इसके अलावा छोटे बच्चे किताब पढ़कर उनके आधार पर चित्र भी बनाते है। चौथी-पाँचवी के बच्चे अपनी पढ़ी हुई किताब का सार लिखने की कोशिश करते हैं। कुल मिलाकर इन सब गतिविधियों पर से बच्चों में स्वतंत्र रूप से पढ़ने-लिखने के कौशलों का विकास होता है। ये सब गतिविधियाँ प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों लिए बहुत जरूरी हैं।

बच्चों को किताबें को पढ़कर सुनाने की गतिविधि में एकलव्य द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में 'बिल्ली के बच्चे', 'नाव चली', 'मैं भी', 'चूहे को मिली पेंसिल', 'रूसी पूसी' रत्ना सागर द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'लालू पीलू' नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'आम की कहानी', 'मेंढक और साँप' स्कॉलास्टिक द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'हाथी की हिचकी', 'मेंढक का नाश्ता' एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित बरखा सीरीज की पुस्तकों का उपयोग किया जा सकता है। इन किताबों को बच्चे पसंद भी करते हैं तथा इनकी कहानी की संरचना व वाक्यों के दोहराव के कारण उन्हें अनुमान लगाने के मौके भी मिलते हैं। इन किताबों में 'हाथी की हिचकी' व बरखा सीरीज की पुस्तक 'मिठाई' का नाम लिया जा सकता है। इनमें दोहराव भी है और बच्चों को सोचने के लिए मौके भी मिलते हैं। इन कहानियों के अंत भी खुले हुए हैं, बच्चे इन पर आगे सोच सकते हैं। 'हाथी की हिचकी' के अंत में हिचकी के बाद हाथी को छींक आने लगती है। यह कहानी बच्चे आगे बढ़ा सकते हैं। इस तरह की अन्य किताबें भी उपयोग में लाई जा सकती हैं।

उक्त कारणों से पहली-दूसरी कक्षाओं के बच्चों को किताब पढ़कर सुनाना एक अनिवार्य गतिविधि लगती है। कक्षा में इन पुस्तकों के उपयोग से बच्चों में छपी सामग्री के प्रति जागरूकता बढ़ती है। वहीं इन पुस्तकों में उनको अनुमान लगाने के मौके मिलते हैं। अक्षर शब्दों की पहचान होती है। उनके लिए अनुभवों की दुनिया खुलती है जिसमें वे अपने अनुभव भी जोड़ सकते हैं। कक्षा में इन सब प्रक्रियाओं के लिए शिक्षक की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। उसे भी इन सब बातों की समझ होनी चाहिए।

बच्चों के साथ काम करते हुए ऐसा अनुभव होता है अगर बच्चों के साथ इस तरह की सामग्री से जुड़ने के अवसर उपलब्ध न हुए हों तो उन्हें समझ में ही नहीं आता कि कहानी कहाँ से शुरू हो रही है। इसके साथ यह भी देखने को मिलता है कि ऐसे बच्चों का किताब पढ़ने के दौरान पूरा फोकस शब्दों पर ही होता है। वे चित्रों को अलग देखते हैं व पाठ्य को अलग। उन्हें इस बात का एहसास ही नहीं होता कि उन्हें चित्रों से पढ़ने में मदद भी मिलती है। इस तरह के उदाहरण प्राथमिक कक्षाओं में देखने को मिलते हैं। एक बार, एक स्कूल में जाना हुआ, वहाँ कक्षा तीन के एक बच्चे ने एक किताब देखनी शुरू

की और उसने शिक्षक से पूछा इसकी कहानी कहाँ से शुरू हो रही है। शिक्षक से बात करने पर पता चला यह बच्चा रोज स्कूल ही नहीं आता है, इस कारण पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया से काफी दूर है। इसी तरह कई बच्चों के पढ़ने के अवलोकन को देखें तो समझ में आता है कि जिन बच्चों का किताबों से वास्ता नहीं बना है, उनका ध्यान केवल लिखित पाठ्य की तरफ ही था। वे चित्रों पर कोई ध्यान ही नहीं दे रहे थे। एक प्राथमिक विद्यालय में रोशनी बरखा सीरीज की 'रानी भी' किताब पढ़ रही थी। किताब पढ़ते हुए उसमें एक वाक्य आया- रानी ने फूलों वाली फ्रॉक पहन ली। वह 'फ्रॉक' शब्द पर अटक रही थी। इस पर जब उसे बताया गया कि लिखे हुए के साथ बने चित्र में रानी ने क्या पहना हुआ है? तब उसने कहा 'फ्रॉक'। इस प्रकार उसे कुछ एहसास हुआ कि लिखित सामग्री व चित्रों का भी एक रिश्ता होता है। इस प्रक्रिया में आगे वह फ्रॉक पढ़कर आगे का वाक्य पढ़ने लगी। इससे लगता है कि शिक्षक के द्वारा, पढ़ने के दौरान चित्रों पर भी बच्चों का ध्यान आकर्षित करवाया जाना चाहिए, जिससे उन्हें पढ़ने के दौरान समझने में मदद मिल सके। इसी तरह किताबों के चित्रों पर बातचीत करने से उन्हें अनुमान लगाने में भी मदद मिलती है। इस प्रकार की प्रक्रियाएँ छोटी कक्षाओं में बहुत जरूरी हैं।

जो बच्चे खुद से किताबें पढ़ने की कोशिश में हैं, उन बच्चों को छोटे समूहों में किताब पढ़ने के मौके देना दूसरी महत्त्वपूर्ण गतिविधि होती है। इसके लिए कक्षा को छोटे समूहों में बाँटा जा सकता है। प्रत्येक समूह में पाँच-छ बच्चे हो सकते हैं और वे आपस में बैठकर किताबें पढ़ सकते हैं। पढ़ते हुए अटकने पर, वे आपस में बात भी कर सकते हैं। शिक्षक से भी पूछ सकते हैं। कक्षा में ऐसा माहौल बनाने का प्रयास शिक्षक को करना चाहिए। यह रणनीति इस नजरिए से भी ठीक लगती है कि हमारे स्कूलों में आने वाले तीसरी, चौथी व पाँचवी के अधिकतर बच्चे प्रवाहपूर्ण ढंग से पढ़ ही नहीं पाते। वे अटक-अटक कर पढ़ते हैं या अभी समझकर नहीं पढ़ पाते। इस प्रक्रिया में जरूरी है कि शिक्षक प्रत्येक समूह में जाएँ और उनकी पढ़ने की प्रक्रिया का अवलोकन करते हुए बच्चों को पढ़ने में सहयोग करें। उनसे किताबों पर बातचीत करें। यहाँ इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि अगर बच्चों को कक्षा में इस तरह के मौके नियमित रूप से दिए जाएँ, तो उनके पढ़ने के स्तर में भी निश्चित रूप से सुधार होता है। इसके लिए कक्षा में विभिन्न तरह की सामग्री का उपयोग किया जा सकता है।

इस स्तर के बच्चे 'बुढ़िया की रोटी' व 'प्यासी मैना' जैसी किताबें बच्चे बहुत पसंद करते हैं। इनके पाठ क्रमबद्धता व दोहराव लिये हुए है जिसमें बच्चों को आनंद आता है। 'हक्का बक्का', 'बतूता का जूता', 'महँगू की टाई' नामक कविता संग्रह भी बच्चों को पढ़ने को दिए जा सकते हैं जिससे बच्चों में कविता पढ़ने में रुचि बनाई जा सकती है। अकबर व बीरबल के किस्सों से अलग 'शहंशाह अखबर को कौन सिखाएगा' नामक किताब एक शासक को अलग रूप में प्रस्तुत करती है। 'ननिहाल में गुजरे दिन', 'रूपा हाथी', पाँच दोस्त', 'दोस्त या दुश्मन', 'छुटकी उल्ली', 'बस की सैर' आदि किताबों को पढ़ने का अपना ही मजा है। इसको बच्चे अपने अनुभवों से जोड़ पाते हैं। इसी तरह 'अम्मा सबकी प्यारी अम्मा' व 'संकट साँप का' जैसी किताबें बच्चों में बच्चों में पशु-पक्षियों के प्रति संवेदनशीलता के भाव को प्रकट करती हैं। इन पर बातचीत की जा सकती है। इन पुस्तकों को पढ़ते हुए जहाँ बच्चे पढ़ना सीख रहे होते हैं, वहीं उनके लिए अनुभवों की दुनिया खुलती है। इसके अंतर्गत वे किताबों में दूसरों के अनुभवों को महसूस कर पाते हैं तथा अपने अनुभवों को जोड़ पाते हैं। इससे उनके सोचने-समझने का दायरा बढ़ता है। उनकी समझ में दूसरे नजरिए भी जुड़ते हैं। यहाँ सबसे जरूरी काम है कि शिक्षक पढ़ने के दौरान उनकी मदद करें। उनसे बातचीत करें जिसमें इस तरह के प्रश्न हों कि तुम्हें कहानी कैसी लगी? इस समस्या का और क्या हल हो सकता है? क्या तुम्हारा भी इस तरह का अनुभव रहा है? अगर तुम इसकी जगह होते तो क्या करते? आदि। इसके साथ चित्रों की सुंदरता का एहसास कराने के लिए चित्रों से जुड़े भी प्रश्न पूछने चाहिए। चित्रों में क्या हो रहा है? कौन से चित्र सुंदर लग रहे हैं? क्यों सुंदर लग रहे हैं? आदि। यहाँ ध्यान देना जरूरी है कि अकसर हम किताबों-कहानियों पर बातचीत करते हुए तथ्यात्मक प्रश्न ही पूछते हैं, जबकि जरूरी है कि उन्हें सोचने व कल्पना करने के प्रश्नों से भी रूबरू करवाया जाए। इसके अलावा इन किताबों पर अपने मन से लिखने व चित्र बनवाने के अभ्यास भी करवाए जा सकते हैं।

प्राथमिक कक्षाओं में बाल पुस्तकों के उपयोग की अगली रणनीति उन पाठकों को ध्यान में रखकर बनाई जा सकती है, जो बच्चे पढ़ तो लेते हैं परंतु उन्हें कुशल पाठक के रूप में विकसित होना है। इसके अंतर्गत पढ़े हुए को समझकर नए प्रश्न सोचना, भाषाई सौंदर्यबोध का एहसास करना, पुस्तक की समस्या को अपने परिवेश से जोड़कर देखना, समस्याओं के नए हल सोचना आदि, काम करवाए जा सकते हैं। इसके लिए कक्षा में उन्हें स्वैच्छिक रूप से पढ़ने के मौके दिए जाने चाहिए, जिससे वे स्वतंत्र पाठक के रूप में विकसित हो सकें। इसके साथ उनसे यह बातचीत भी की जा

सकती है कि उन्हें किताब के कौन से हिस्से अच्छे लगे और क्यों? इन किताबों में एक विविधता होनी चाहिए जैसे 'मुल्ला नसरूद्दीन के किस्से' व 'अकबर बीरबल की कहानियाँ' एक हास्यबोध लिये हुए हैं। उन्हें ये बच्चे मजे के लिए पढ़ सकते हैं। कविताओं के आनंद के लिए 'महके सारी गली-गली' नामक किताब पढ़ने को प्रदान की जा सकती है। 'कजरी गाय' शृंखला की पुस्तकें व 'पिप्पी के लम्बे मोजे' नामक जैसी किताबें बच्चों को आनंद तो प्रदान करती हैं और सोचने का नया नज़रिया भी देती हैं। 'पंचतंत्र की कहानियाँ' व 'जंगल की कहानियाँ' देश की पारंपरिक कहानियों का रस प्रदान करती हैं। इसी तरह से 'पहाड़ जिसे चिड़िया से प्यार हुआ', 'दानी पेड़', 'जिसने उम्मीद के बीज बोए' 'स्वामी और उसके दोस्त', 'भोलू और गोलू' तथा 'बब्बर सिंह और उसके साथी' बच्चों के लिए रोचक भी हैं, और उन्हें अच्छे साहित्य से परिचित भी कराती हैं। 'नकचढ़ी राजकुमारी' और 'व्हीलचेयर ही मेरे पैर हैं' जैसी किताबें विकलांग बच्चों के प्रति संवेदनशीलता तो जगाती ही हैं और विकलांगता के प्रति एक सामाजिक जिम्मेदारी का एहसास भी दिलाती हैं। 'क्यूँ-क्यूँ लड़की' बच्चियों को सवाल पूछने वाले के रूप में प्रस्तुत करती हैं। इसी प्रकार 'जू की कहानी' मध्यम वर्गीय बच्चों में हाशियाकृत बच्चों की भागीदारी का भाव जगाती हैं। इन पर बच्चों के साथ चर्चाएँ आयोजित की जा सकती हैं और स्वतंत्र रूप से लिखने के अभ्यास करवाए जा सकते हैं।

अंत में बच्चों की किताबों के कक्षा में उपयोग के अंतर्गत मूल बात यह समझने की है कि बच्चों को नियमित रूप से किताबों को पढ़ने के मौके दिए जाएँ। उन्हें स्वतन्त्र रूप से किताबों को चुनने व पढ़ने की छूट हो। इन किताबों के साथ बच्चों को अपने परिवेश के अनुभव जोड़ने के मौके मिलें। उनसे शिक्षक बातचीत करें जिससे वे अपने पढ़े हुए का अर्थ एक व्यापक संदर्भ में ग्रहण कर पाएँ। उन्हें अपनी समझ को समृद्ध करने का मौका भी मिले। उनमें अच्छी कहानियों व अच्छे चित्रों की समझ भी विकसित हो सके। कुल मिलाकर यह समझना जरूरी है कि इन किताबों को हम बच्चों में पढ़ने की आदत का विकास और एक अच्छा पाठक विकसित करने के नजरिए से देख रहे हैं। इस नजरिए से इन पुस्तकों के कक्षा में उपयोग की आवश्यकता बढ़ जाती है। इस बात को पूरे शैक्षिक तंत्र को समझना चाहिए तथा अच्छी बालपुस्तकें स्कूलों में अनिवार्य रूप से उपलब्ध करवानी चाहिए। इस पर शिक्षकों की भी तैयारी करवाई जानी चाहिए। उन्हें भी बच्चों की किताबों में रुचि लेना सीखना चाहिए। यहाँ यह बात गौर करने की है कि अगर शिक्षक खुद किताबों में रुचि नहीं लेंगे तो बच्चों के साथ अच्छी तरह काम भी नहीं कर पाएँगे।

इस संबंध में स्टीफन क्रेशन के अध्ययनों को याद करना भी उचित ही रहेगा। उन्होंने अमेरिकी स्कूलों में पढ़ने और समझने की प्रक्रिया को लेकर कई सारे स्कूलों में 1993 से लेकर 2001 तक कई केस अध्ययन किए। इन केस अध्ययनों के दौरान उन्होंने स्कूलों में बच्चों को तीन समूहों में बाँटा। एक समूह में बच्चों के साथ 'सहपठन' पर काम किया था। इस प्रक्रिया में शिक्षक बच्चों के पढ़े हुए पर उनसे नियमित रूप से बात करते थे। दूसरे समूह में सिर्फ बच्चों को नियमित तौर पर पढ़ने की सामग्री ही उपलब्ध कराई गई थी और 'स्वतंत्र व स्वैच्छिक पठन' के तहत काम किया गया। बच्चों से उस पर कोई बात नहीं होती थी। तीसरे समूह को ऐसा कोई एक्सपोजर नहीं दिया गया था। इन समूहों का क्रेशन नियमित अंतराल पर अवलोकन करते रहे। एक साल बाद जब उन्होंने इन समूहों का मूल्यांकन किया, तो पाया कि जिन बच्चों के साथ 'सहपठन' पर काम किया गया, उन बच्चों की पढ़ने, समझने और लिखने की क्षमता का दूसरे अन्य समूहों से बेहतर विकास हुआ। यही नहीं, दूसरे समूह में, जहाँ बच्चों के साथ केवल नियमित तौर पर पढ़ने की सामग्री ही साझा की गई, उनका पुस्तकों को पढ़ने-समझने का स्तर तीसरे समूह से बेहतर पाया गया। क्रेशन ने अपनी इन अध्ययनों के बारे में अपनी पुस्तक 'फ्री वालेंटरी रीडिंग' में विस्तार से लिखा है। इससे हमें काफी अंतर्दृष्टि मिल सकती है।

कमलेश चन्द्र जोशी

कमलेश जोशी विगत 20 वर्षों से प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र से गहरा जुड़ाव बनाए हुए हैं। प्राथमिक शिक्षा से जुड़े विभिन्न पहलुओं, आरंभिक साक्षरता, शिक्षक-शिक्षा, बाल साहित्य व स्कूल पुस्तकालय, आदि में गहरी रुचि रखते हैं। पूर्व में 'प्रारंभिक शैक्षिक संवाद' नामक शैक्षिक पत्रिका का सम्पादन किया है। वर्तमान में अजीम प्रेमजी फाउंडेशन, देहरादून में कार्यरत हैं। सम्पर्क- kamlesh@azimpremjifoundation.org

दिल्ली के रानी बाग बालक विद्यालय में इलाके के पार्षद, प्रधान शिक्षक व शिक्षा विभाग के सदस्य रूम टू रीड के पुस्तकालय का उद्घाटन करते हुए।

रूम टू रीड कार्यकर्ता सदस्यों को पुस्तकालय की पुस्तकों व उनके स्तर के बारे में बताते हुए।

Room to Read®

World Change
Starts with
Educated Children